पुलिस विज्ञान

(त्रैमासिक पत्रिका)

अक्टूबर-दिसम्बर, 2010

सलाहकार समिति

प्रसून मुखर्जी

महानिदेशक

शेषपाल वैद

निदेशक (प्रशासन)

संपादक : **दिवाकर शर्मा**

पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो

ब्लाक-11, 3 एवं 4 मंजिल

सी.जी.ओ. कम्पलैक्स, लोदी रोड

नई दिल्ली-110003

संपादकीय

पुलिस विज्ञान त्रैमासिक पत्रिका का जुलाई-सितम्बर, 2010 का अंक पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। जैसा कि संपादक मंडल का यह प्रयास रहता है कि पत्रिका में पुलिस, न्यायालयिक विज्ञान व अन्य संबंधित विषयों की प्रामाणिक व प्रासंगिक जानकारी प्रदान की जाए। अतः अपराधों को सुलझाने में पुलिसकर्मियों द्वारा किस प्रकार की कार्य प्रणाली अपनाई जाए, अपराधों से निपटने तथा अपराध होने की संभावनाओं से संबंधित कुछ ओजस्वी विचार तथा प्रेस की भूमिका पर वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों तथा समाज के कुछ प्रबुद्ध वर्ग द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं जो आम पुलिस-कर्मी के साथ सभी वर्ग के लिए उपयोगी होते हैं।

इस अंक में इस बार आप सभी के लिए **हिंसाग्रस्त इलाके, मीडिया और सुरक्षाबल, मृत्यु के समय का संभावित आकलन, नारकोएनालिसिस टेस्ट असंवैधानिक, भारत में मानव व्यापार के अपराध और पुलिस की भूमिका, भारत में जेल सुधार : प्रयास एवं संभावनाएं, आतंकवाद के उपागम, पुलिस में व्यवहारिक बदलाव से व्यावसायिक दक्षता, महिला सशक्तिकरण एवं सुरक्षा** से संबंधित लेख भी हैं। पत्रिका के सुधी पाठक पत्रिका को और अधिक सूचनाप्रद व उपयोगी बनाने में अपना सक्रिय सहयोग प्रदान कर सकते हैं। आशा है कि पत्रिका में सम्मिलित सभी लेख पाठकों को उपयोगी लगेंगे और वे अपने विचारों से संपादक मंडल को अवगत कराते रहेंगे। आपके विचारों का सहर्ष स्वागत है।

दिवाकर शर्मा
संपादक

वर्ष - 28 | अंक 112 | अक्टूबर-दिसम्बर, 2010

अनुक्रम

हिंसाग्रस्त इलाके, मीडिया और सुरक्षाबल
• *अरविंद कुमार सिंह* 7

मृत्यु के समय का संभावित आकलन
• *डॉ. साहिब सिंह चाँदना* 13

नारकोएनालिसिस टेस्ट असंवैधानिक
• *अरुण कुमार पाठक* 19

भारत में मानव व्यापार के अपराध और पुलिस की भूमिका
• *उमेश कुमार सिंह* 29

भारत में जेल सुधार : प्रयास एवं संभावनाएं
• *डॉ. सुरेन्द्र कटारिया* 37

आतंकवाद के उपागम
• *डॉ. अखिलेश शुक्ल* 44

पुलिस में व्यवहारिक बदलाव से व्यावसायिक दक्षता
• *राकेश कुमार सिंह* 48

महिला सशक्तिकरण एवं सुरक्षा *52*
• *डॉ. वीरां चाँदना*

समीक्षा समिति के सदस्य

प्रो. एम. ज़ैड. खान, नई दिल्ली
प्रो. एस.पी.श्रीवास्तव, लखनऊ
श्री एस.वी.एम त्रिपाठी, लखनऊ
प्रो. बलराज चौहान, भोपाल
प्रो. अरुणा भारद्वाज, नई दिल्ली
प्रो. जे.डी. शर्मा, सागर, (म.प्र.)
प्रो. स्नेहलता टंडन, नई दिल्ली
डा. दीप्ति श्रीवास्तव, भोपाल
प्रो. वी.के. कपूर, जम्मू
डा. शैलेंद्र कुमार चतुर्वेदी, मेरठ
डा. अरविंद तिवारी, मुंबई
डा. उपनीत लल्ली, चंडीगढ़
श्री एस.पी. सिंह पुंडीर, लखनऊ
श्री पी. डी. वर्मा, छत्तीसगढ़
श्री वी.वी.सरदाना, फरीदाबाद
श्री सुनील कुमार गुप्ता, नई दिल्ली

'पुलिस विज्ञान' में प्रकाशित लेखों में लेखकों के विचार निजी हैं। इनसे पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो, गृह मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली की सहमति आवश्यक नहीं।

कवर डिजायन : राहुल कुमार
अक्षरांकन एवं पृष्ठ सज्जा : रचना इंटरप्राइजिज, वी-8, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

हिंसाग्रस्त इलाके, मीडिया और सुरक्षाबल

अरविंद कुमार सिंह

परामर्शदाता, भारतीय रेल, रेल मंत्रालय, नयी दिल्ली

पूर्व संपादक, जनसत्ता एक्सप्रेस एवं हरिभूमि

भारतीय मीडिया परिदृश्य

आजादी के बाद से बीते छह दशक के लंबे अंतराल के दौरान खास तौर पर हिंदी और भाषाई पत्रकारिता का जमीनी आधार बहुत मजबूत और विकसित हुआ है। इसमें भी हिंदी मीडिया बहुत शक्तिशाली हो गया है और ऊंचे पदों पर बैठे पत्रकारों के वेतन और सुविधाओं के मामले में भी परिस्थितियां पहले से काफी बेहतर हुई हैं। देश के तमाम हिस्सों में मीडिया शिक्षण तथा प्रशिक्षण की संस्थाओं का भी व्यापक विस्तार हुआ है। इलेक्ट्रानिक मीडिया का भी व्यापक विस्तार हुआ है फिर भी अखबारों का प्रसार बहुत तेजी से बढ़ रहा है। विस्तार से खबरें जानने का साधन आज भी अखबार ही बने हुए हैं। भारत में इस समय चैनलों की कुल संख्या 498 हो गयी है, जिसमें से करीब 200 तो न्यूज चैनल हैं। इनमें सर्वाधिक चैनल हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के हैं और कई तो बेहद लोकप्रिय भी हैं। इसी तरह देश के करीब सभी हिस्सों में दूरदर्शन तथा आल इंडिया रेडियो की काफी मजबूत पकड़ हो चुकी है।

इंडियन रीडरशिप सर्वे 2009 के आंकड़े दर्शाते हैं कि हिंदी के पांच अखबार दैनिक जागरण, दैनिक भास्कर, अमर उजाला, हिन्दुस्तान तथा राजस्थान पत्रिका देश में शीर्ष 10 अखबारों में शामिल हो गए हैं। यह भी उल्लेखनीय तथ्य है कि अब देश के शीर्ष 10 अखबारों में अंग्रेजी का कोई भी अखबार शामिल नहीं है। वहीं दैनिक जागरण की पाठक संख्या बढ़कर 5.45 करोड़ हो गयी है, जबकि दैनिक भास्कर की 3.19 करोड़, अमर उजाला की 2.95 करोड़ और हिंदुस्तान की 2.67 करोड़। टाप-10 की सूची में मराठी दैनिक लोकमत, तमिल दैनिक थांथी तथा दिनकरन और आनंद बाजार पत्रिका भी शामिल है। अंग्रेजी अखबारों में टाइम्स आफ इंडिया नंबर एक पर है पर उसकी पाठक संख्या 1.33 करोड़ है, जबकि हिंदुस्तान टाइम्स की 63.4 लाख और हिंदू की पाठक संख्या 53.73 लाख। 1947 में आजादी के पहले भारत में किसी भी हिंदी अखबार की प्रसार संख्या 30 हजार से ज्यादा नहीं थी। पर बीते दशक में विशुद्ध क्षेत्रीय माने जाने वाले हिंदी के अखबारों ने राष्ट्रीय अखबारों को भी पीछे छोड़ दिया है। इसी तरह हिंदी की हैसियत भी अब बहुत बढ़ गयी है। भारत में 1953 से हिंदी दिवस मनाने की परंपरा शुरू हुई थी पर 10 जनवरी 2006 से विश्व हिंदी दिवस भी मनाया जाने लगा है। करीब 165 विदेशी विश्वविद्यालयों में हिंदी में पठन-पाठन हो रहा है। इसी तरह बहुराष्ट्रीय कंपनियां अपने लोगों को भारत के गांवों में माल बेचने के लिए हिंदी सिखा रही है।

हिंदी पत्रकारिता का शुभारंभ 30 मई 1826 माना जाता है, जब श्री युगल किशोर शुक्ल ने कोलकाता से उदन्त मार्तण्ड नामक अखबार शुरू किया था। पर उससे भी पहले 29 जनवरी 1780 को हिक्की ने बंगाल गजट या कलकत्ता जनरल एंड एडवर्टाइजर नामक अखबार शुरू किया था। तब से भारतीय पत्रकारिता ने काफी लंबा सफर तय किया है और प्रौद्योगिकी ने पत्रकारिता की दुनिया बदल दी है। आजादी के आंदोलन में मिशनरी पत्रकारिता एक प्रभावशाली हथियार बनी थी और महात्मा गांधी समेत हमारे कई राष्ट्रीय नेताओं ने अखबार निकाला था। कई नेता जिन्होंने अखबार तो नहीं निकाला था पर वे सक्रियता से अखबार से जुड़े थे। पर आजादी के बाद जीवन मूल्यों में बदलाव आया और मीडिया की दुनिया

भी बदली है। फिर भी अभी मीडिया में बहुत कुछ करने की गुंजाइश है। खास तौर पर तमाम विषयों पर जनजागरूकता लाने में मीडिया जो भूमिका निभा सकता है, वह कोई और माध्यम नहीं कर सकता है। पर तमाम भूमिकाओं को लेकर मीडिया पर आजकल जितना सवाल खड़े हो रहे हैं, वैसे सवाल पहले खड़े नहीं होते थे।

चुनौतियों भरी डगर

देश के विभिन्न इलाकों में हजारों पत्रकार जान जोखिम में डालकर काम कर रहे हैं। हाल में इंटरनेशनल प्रेस इंस्टीट्यूट (आईपीआई) की ओर से जारी एक रिपोर्ट में कहा गया है कि अब पत्रकारों के लिए मध्य पूर्व की जगह एशिया सबसे खतरनाक जगह बन गयी है। एशिया में भी भारत पत्रकारों की हत्या के मामले में तीसरे नंबर पर है। वर्ष 2008 में भारत में जम्मू-कश्मीर में जावेद अहमद मीर और अशोक सोढ़ी, असम में मोहम्मद मुस्लीमुद्दीन व जगजीत साइकिया तथा बिहार में पत्रकार विकास रंजन की हत्या कर दी गयी। यहां कश्मीर तथा पूर्वोत्तर के इलाकों में पत्रकारों को काफी जटिल माहौल में काम करना पड़ता है। इसके अलावा अन्य हिस्सों में भी राजनीतिक और धार्मिक संगठनों के लोग पत्रकारों पर हमले करते रहते हैं या धमकी देते रहते हैं। वैसे तो दुनिया के कई देशों की तुलना में भारत पत्रकारों के लिए आजादी से काम करने की सबसे बेहतरीन जगह माना जाता है, पर पत्रकारिता के समक्ष यहां भी खतरे कम नहीं है। खास तौर पर हिंसाग्रसत इलाकों में दुर्गम क्षेत्रों में उनके समक्ष गंभीर दायित्व के साथ जटिल चुनौतियां हैं।

उग्रवाद तथा आतंकवाद प्रभावित इलाके

आतंकवाद और विद्रोह के संबंध में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग दृष्टिकोण उल्लेखनीय है। आयोग का मानना है कि आतंकवाद कोई बीमारी नहीं है बल्कि सामाजिक-राजनीतिक बीमारी का लक्षण है और इससे कारगर तरीके से निपटने के लिए पहले इसके कारणों की तह तक जाना जरूरी है। आयोग के अनुसार आतंकवाद या उग्रवाद को उचित नहीं ठहराया जा सकता है, पर यह भी हमें नहीं भूलना चाहिए कि दूरदराज और दुर्गम क्षेत्रों में बहुत से लोग ऐसी परिस्थितियों में रहते हैं जहां यह रोग पनप सकता है। लंबे समय तक मानवाधिकारों का लगातार उल्लंघन विवादों और आतंकवाद का मूल कारण है। आतंक और मानवाधिकारों की लगातार अवहेलना कर बेहतर भविष्य की आशा रखने वाले लोगों को उनके अधिकारों से वंचित रखना आतंकवाद को पनपाने में सहायक होता है। बड़े पैमाने पर सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक भेदभाव राज्य के भीतर तथा बाहर विवादों को जन्म देता है। इस नाते ऐसे विवादों को रोकने के लिए आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों को साकार करना चाहिए और इनको यथोचित महत्व देना चाहिए। आयोग के अनुसार आम तौर पर आतंकवाद ऐसे वातावरण में फलीभूत है जहां राज्य द्वारा मानवाधिकारों खास तौर पर आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की मनाही की जाती है या उनका उल्लंघन किया जाता है। भोजन, स्वास्थ्य और शिक्षा जैसे अधिकार की लगातार अवहेलना भी इसका कारण हो सकता है। विवादों और आतंकवाद के समाधान की सटीक रणनीति से आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों का उपयोग सुनिश्चित करना होगा।

पर यह वास्तविकता भी काबिलेगौर है कि आतंकवाद निर्दोष लोगों के मानव अधिकारों की जड़ पर वार करता है। आयोग ने आतंकवाद तथा अतिवाद की समस्याओं के प्रति अधिक सजगता दर्शायी है क्योंकि ये अधिकार आज मानवता के प्रति गंभीर खतरा के रूप में प्रकट हुए हैं। ये केवल कानून और व्यवस्था के मुद्दे नहीं हैं और इनका गहरा सर्वव्यापक आयाम और मूल

है। इस नाते आयोग का मत है कि इनकी रोकथाम और नियंत्रण के लिए कानूनों का कारगर ढंग से प्रवर्त्तन और सुशासन अपरिहार्य है। इसी तरह आयोग ने आतंकवादी कृत्यों के पीड़ितों की भलाई की बात उठाने के साथ उनके राहत और पुनर्वास पर विशेष ध्यान दिया है। आयोग का मानना है कि आतंकवाद के कृत्यों के लिए जिम्मेदार लोगों के खिलाफ कार्रवाई होनी चाहिए और इसके लिए आम तौर पर हमारा मौजूदा कानून पर्याप्त है। पर इनके मुकाबला करने के उपायों से लोकतांत्रिक मूल्यों पर चोट नहीं पहुंचनी चाहिए और मानवाधिकारों का उल्लंघन नहीं होना चाहिए। न ही कानून का कोई नियम टूटना चाहिए। आतंकवाद से निपटने के लिए मानवाधिकारों का संरक्षण और संवर्धन अनिवार्य है। किसी प्रकार की भेदभाव या विभाजक सोच घातक सिद्ध होगी। सीमित सोच से कुछ आतंकवादियों को समाप्त किया जा सकता है पर इससे अनेक निर्दोषों के मानवाधिकारों के उल्लंघन की कीमत भी देनी होगी। मानवाधिकारों के प्रति सम्मान को आतंकवाद से निपटने की रणनीति का अनिवार्य अंग के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।

भारत के कई इलाकों में एक अरसे से सशस्त्र टकराव चल रहा है जिसे नियंत्रित करने के लिए बड़ी संख्या में पुलिस, अर्धसैन्य तथा सेना की तैनाती की गयी है। हालांकि सेना की तैनाती मुख्यतया जम्मू-कश्मीर और पूर्वोत्तर में ही पर विभिन्न क्षेत्रों से आए दिन सेना तैनाती की मांग्र उठती रहती है। केंद्रीय गृह मंत्रालय की आंतरिक सुरक्षा के मूल्यांकन संबंधी एक रिपोर्ट का कहना है कि जम्मू कश्मीर में 1990 से उग्रवाद या आतंकवाद से एक दर्जन जिले प्रभावित हैं, जबकि पूर्वोत्तर में नागालैंड में 1953 के बाद से सेना तैनात है। असम, मणिपुर तथा त्रिपुरा में 44 जिले विद्रोह से प्रभावित हैं। इसी तरह नक्सलवाद के गंभीर चपेट में आंध्र प्रदेश, बिहार, छत्तीसगढ़, झारखंड, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल समेत एक दर्जन राज्यों के 127 जिले आ गए हैं। इनमें भी 9 राज्यों के 76 जिलों की हालत तो काफी नाजुक है। इसी प्रकार राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली समेत देश के 14 राज्य सांप्रदायिक दृष्टि से संवेदनशील हैं, जबकि सात राज्यों के 24 जिले जातीय तनाव बहुल हैं। पिछले पांच सालों में कुल 4405 लोग नक्सलवाद की भेंट चढ़े। इसी अवधि में कश्मीर में 4136 तथा पूर्वोत्तर के राज्यों में 4324 लोगों ने अपनी जान गंवाई। नक्सलियों के खिलाफ छत्तीसगढ़ में सलवा जुडूम के नाम पर अत्याचारों की अनकही गाथाएं प्रकाश में आ रही हैं। मानवाधिकार आयोग और सुप्रीम कोर्ट तक यह मामला पहुंचा और आदिवासियों पर होनेवाले जुल्म की नकाब उतरी।

इस तरह देखें तो समग्र रूप से देश का करीब 40 प्रतिशत इलाका काफी तनाव से गुजर रहा है। बीते दो दशक में 65 हजार से ज्यादा निर्दोष लोग आतंकवाद का शिकार बन चुके हैं। जम्मू-कश्मीर में ही 1990 से 2006 के बीच में 40 हजार लोग मारे जा चुके हैं जिसमें चार हजार तो सुरक्षा बल के जवान है। यही नहीं चंबल घाटी से लेकर नारायणी के बीहड़ो और बुंदेलखंड के पठारी इलाकों में खतरनाक हथियारों से लैस डाकू गिरोह भी आए दिन खून-खराबा तथा अपहरण कर रहे हैं।

इसी तरह उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे राज्यों में राजनीतिक दलों में गिरोहबंदी तथा कई जातीय सेनाओं का गठन हो चुका है और कई नरसंहार इन सेनाओं द्वारा किए जा चुके हैं। इस माहौल के बीच हिंसाग्रस्त इलाकों में बड़ी संख्या में पत्रकार भी तैनात हैं। कई बार वे खुद खबरें बन जाते हैं और उनको शहादत भी देना पड़ता है। राजनेता, जवान या अन्य लोग अगर आतंकवादी हिंसा के बीच मारे जाते हैं तो उनको शहीद घोषित किया जाता है, पर पत्रकारों के मामले में ऐसा संबोधन सुनने को नहीं मिलता है। राज्य सरकारें वैसे भी पत्रकारों से कुपित रहती हैं, इस कारण पीड़ित पत्रकार परिवारों की मदद के

लिए आज तक केंद्र या राज्य सरकार के स्तर पर कोई ऐसा तंत्र नहीं विकसित हो पाया है जो उनके परिजनों की मदद कर सके। फिर भी इन हिंसाग्रस्त इलाकों में तैनात पत्रकार काफी खतरे के बीच अपने दायित्वों का निर्वहन कर रहे हैं और मानवाधिकार हनन, सुरक्षा बलों की चुनौतियों से लेकर तमाम खामियों की रिपोर्ट भी करते हैं। पर कई बार सही खबरें खिलने के चक्कर में वे खुद खबरें बन जाते हैं और उनको शहादत तक देनी पड़ती है। कश्मीर तथा पूर्वोत्तर के इलाकों में काफी लंबे समय से चुनौती झेली जाती रही है। महानगरों और विशेषतः दिल्ली या राज्यों की राजधानियों में पत्रकार काफी सुरक्षा के वातावरण में काम करते हैं। पर दुर्गम और खतरनाक इलाकों में निहत्थे और सामाजिक सुरक्षा की गारंटी के बिना बड़ी संख्या में पत्रकार बेहद तनाव के बीच में काम कर रहे हैं। इन इलाकों में फिदायीन हमलों से लेकर बारूदी सुरंगों का खतरा आम बात है। फिर भी पत्रकारों की सुरक्षा का भी ठोस इंतजाम आज तक नहीं हो पाया है। कभी कभी पत्रकारों पर बड़े हमलों के बाद जब संगोष्ठी होती है तो उसका निचोड़ यही निकलता है कि यह सब तो व्यवसाय का खतरा है, इसे तो झेलना ही पड़ेगा। शायद यही कारण है कि नाम मात्र के ही मीडिया संस्थानो में पत्रकारों को बीमा कवर या अन्य सुविधाओं की व्यवस्था की गयी है।

सर्वाधिक असुरक्षित : भाषाई पत्रकार

इनमें भी अंग्रेजी पत्रकारों की तुलना में हिंदी और भाषाई पत्रकारों को कुछ ज्यादा ही चुनौती झेलनी पड़ रही है। कुछ अपवादों को छोड़ दें तो आम तौर पर गंभीर पत्रकार राष्ट्रीय एकता, अखंडता और गरिमा-गौरव और मानव अधिकारों के प्रति सजग तथा सचेत होने के साथ जमीनी सच्चाइयां उजागर करते हैं। लेकिन ऐसा करते समय वे एक तरफ आतंकियों या अराजक तत्वों के हत्थे चढ़ते हैं तो दूसरी तरफ मानव अधिकार उल्लंघन जैसे मामलों में रिपोर्ट छापने पर सुरक्षा बलों की भी नाराजगी मोल लेते हैं। संचार क्रांति के चलते टीवी तथा अखबारों दोनों के पत्रकारों में सबसे पहले खबर देने और ब्रेकिंग या एक्सक्लूसिव खबरों की होड़ मची रहती है। इस नाते कई बार गलत, अतिरंजना भरी या एकतरफा खबरें भी आ जाती हैं। इससे पत्रकारिता की विश्वसनीयता पर दाग लगता है। पर यह गंभीर समस्या भी है कि इन खतरनाक इलाकों में पत्रकारों के सामने सबसे बड़ी चुनौती सही सूचनाओं को हासिल करने या उनकी पुष्टि कराने में भी आती है। कुछ इलाकों में तो पत्रकारों को सेनाधिकारियों की ब्रीफिंग पर ही निर्भर रहना पड़ता है, पर जरूरी मौकों पर सेनाधिकारी पुष्टि के लिए उपलब्ध नहीं होते। हां, अंग्रेजी पत्रकारों के प्रति जरूर सैन्य अधिकारियों का रवैया छोड़ा उदार रहता है।

हिंसाग्रस्त इलाकों में सेना और पुलिस के जवान भी काफी तनाव के बीच में काम करते हैं, पर पत्रकारों के तनाव और डेडलाइन का आतंक भी कम नहीं होता। पत्रकारों को हमेशा जान का जोखिम भी रहता है, जबकि सेना तथा पुलिस के पास कम से कम हथियार और बुलेटप्रूफ जैकेट तो होते हैं। लेकिन पत्रकारों के प्रति उनका रवैया उदार नहीं रहता है। दुर्भाग्य से पुलिस के अधिकारियों और जवानों के बीच में देश भर में यह धारणा सी बन गयी है कि मीडिया उनकी राह का रोड़ा है और वह निरर्थक आलोचना करता रहता है। इसी नाते सामान्य जानकारियां भी शासकीय गोपनीयता या राष्ट्रीय सुरक्षा का बहाना लेकर पत्रकारों को नहीं दी जाती हैं, जबकि ऐसी बहुत सी सूचनाएं इंटरनेट पर सुलभ होती हैं। कुछ जगहों पर तो पुलिस मानवाधिकार उल्लंघन के मामले करती है और अगर पत्रकार उनको उचित तथ्यों के साथ उजागर करते हैं तो उग्रवादी गुटों का समर्थक बताकर परेशान किया जाता है। कई मामलों में उनको आतंकवादियों का मुखबिर, पाकिस्तान का एजेंट या नक्सलवादियों का आदमी घोषित कर दिया

जाता है। इस कारण से पुलिस और सुरक्षा बलों की भीतर संवादहीनता बढ़ती है।

हाल में बस्तर संभाग के जगदलपुर, कांकेर, दंतेवाड़ा, बीजापुर और नारायणपुर जिले के पत्रकारों ने केंद्रीय गृह मंत्री पी. चिदंबरम् को एक ज्ञापन भेज कर कहा है कि बस्तर संभाग में पुलिस उन पर नक्सली खबरों के प्रकाशन और प्रसारण के लिए अनावश्यक दबाव बनाने की कोशिश कर रही है। पुलिस गोपनीयता का हवाला देते हुए कोई सच्चाई नहीं बताती है और पुलिस अधीक्षक के स्तर पर मीडिया पर दबाव बनाया जा रहा है। इसी तरह कुछ जगहों पर सशस्त्र बल विशेषाधिकार कानून का आतंक दिखा कर मीडिया का भयादोहन भी किया जाता है।

जम्मू-कश्मीर और मीडिया

जम्मू-कश्मीर में पत्रकारों के लंबे समय से बहुत प्रतिकूल माहौल में काम करना पड़ रहा है। वहां पर सच लिखने वाले पत्रकारों को आए दिन आतंकवादी गुटों से धमकियां मिलती रहती हैं। कई पत्रकारों को तो गोलियों से उड़ा दिया गया। सरकार ने वहां कुछ पत्रकारों को सुरक्षा कवर भी मुहैया कराया है और कई टीवी चैनलों ने भी अपने पत्रकारों को बुलेटप्रूफ जैकेट व टोपी मुहैया करायी है लेकिन बाकी सभी पत्रकार निहत्थे ही कर्तव्य को अंजाम दे रहे हैं। कश्मीर में हालांकि संवाददाताओं की कुल संख्या करीब 200 है, जिसमें से 84 राज्य सूचना विभाग से मान्यता प्राप्त हैं। पर 1990 में आतंकवाद के उभार के बाद से अब तक करीब 18 पत्रकारों को यहां शहादत देनी पड़ी है और कई पत्रकार बुरी तरह घायल हुए हैं। जुलाई 2005 में एक आतंकी घटना में श्रीनगर में आठ पत्रकार उस समय गंभीर रूप से घायल हो गए थे जब वे हमले का लाइव कवरेज कर रहे थे। इसी तरह वरिष्ठ फोटो पत्रकार अशोक सौढ़ी की मौत सांबा के आतंकी हमले में हो गयी थी। लेकिन बात केवल यही तक नहीं है टेलीग्राफ तथा बीबीसी के संवाददाता यूसुफ जमील की सेना द्वारा गैर कानूनी गिरफ्तारी भी खासी चर्चा में रही थी। उनको गिरफ्तार करने के बाद यह खबर उड़ायी गयी थी कि उन्हें आतंकवादी उठा ले गए हैं। इसी तरह रायटर के संवाददाता जफर मीराज के साथ भी काफी ज्यादती हुई। कश्मीर टाइम्स के फोटोग्राफर मिराजुद्दीन और एक्सेल्सियर के संवाददाता मुख्तार हुसैन की भी पुलिस द्वारा बुरी तरह पिटाई की गयी।

कश्मीर में तो दूरदर्शन तथा आल इंडिया रेडियो से जुड़े पत्रकारों ने काफी यातनाएं झेली हैं। रेडियो तथा दूरदर्शन को आतंकवादी सरकारी भोंपू की संज्ञा देते हैं। सच यह है कि कश्मीर में आतंकवाद के निशाने पर सबसे पहले सरकारी मीडिया ही आया था और श्रीनगर दूरदर्शन केंद्र के निदेशक लस्सा कौल की 13 फरवरी 1990 को उनके निवास पर आतंकवादियों ने गोली मार कर हत्या कर दी थी। इसी तरह 1 मार्च 1990 को सहायक सूचना निदेशक पी.एन. हांडू, 23 मार्च 1991 को अलसफा के संपादक मुहम्मद शबान वकील की हत्या कर दी गयी थी। बीबीसी संवाददाता युसुफ जमील के घर पर 1992 में हथगोले फेंके गए और 1993 में श्रीनगर टाइम्स के प्रबंधक अब्दुल गनी का अपहरण कर लिया गया। रेडियो कश्मीर के समाचार वाचक मुहम्मद शफी बट्ट तथा मुहम्मद हुसैन जफर के साथ श्रीनगर दूरदर्शन के एस.पी.सिंह की भी हत्या कर दी गयी। इसी तरह 1995 में बीबीसी के तीन पत्रकारों पर हमला किया गया जिसमें से एक की मौत हो गयी। 29 मई 2002 को कश्मीर इमेजेस के पत्रकार जफर इकबाल को आतंकवादियों ने गोली मार कर घायल कर दिया। इसके बाद भी हमलों का दौर जारी रहा और कई पत्रकारों को मार दिया गया या बुरी तरह घायल कर दिया गया। आतंकवादियों ने कई बार वहां संपादकों पर इस बात के लिए दबाव डाला कि वे अमुक मुख्यमंत्री को

कठपुतली लिखें और अमुक के बारे में न लिखे। पर आतंकवाद के शिकार हुए पत्रकारों के परिजनों की किसी ने सुधि नहीं ली। सरकार ने कई साल पहले पत्रकारों को सामूहिक बीमा कवर देने का वादा किया था पर वह नहीं पूरा हुआ।

कश्मीर घाटी में आतंकवादी हमले तेज होने के बाद सबसे पहले जनवरी 1990 में श्रीनगर से सभी विदेशी संवाददाताओं को निकालने का आदेश दे दिया गया था। साथ ही देसी मीडिया पर भी खूब शिकंजा कसा और अधिकारों की आड़ में सेना तथा अर्धसैन्य बलों को मनमानी की छूट मिल गयी। इसी पृष्ठभूमि में भारतीय प्रेस परिषद की कश्मीर समिति का गठन भी किया गया था। समिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि विदेशी संवाददाताओं को श्रीनगर से निकाल देना एक भूल थी। जम्मू-कश्मीर की घटनाओं को कवर करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय समाचार माध्यमों को भी सभी सुविधाएं प्रदान करनी चाहिए। अंतर्राष्ट्रीय जनमत को जीतने के लिए खुली नीति को अपनाना ही लाभप्रद होगा, भले ही कुछ पत्रकारो के समाचारों के प्रेरित होने की आशंका क्यों न हो। समिति की कुछ बेहद अहम सिफारिशें देश के किसी भी सशस्त्र टकराव वाले इलाकों के लिए आज भी खास अहमियत रखती हैं। कश्मीर समिति ने अपनी सिफारिशों में कहा कि-

1-सुरक्षा बलों को चाहिए कि वे पत्रकारों के नाम जारी पहचान पत्रों या कर्फ्यू पासों को हमेशा स्वीकार करें। अगर किसी पत्रकार को पूछताछ के लिए रोका जाये तो उनके साथ किसी प्रकार का दुर्व्यवहार नहीं हो और उनको दफ्तरों को तत्काल सूचित किया जाये।

2-स्थानीय पत्रकारों के बारे में कोई ठोस धारणा बनाने से पहले इस तथ्य को ध्यान में रखा जाये कि उनको उग्रवादियों के दबाव में भी काम करना पड़ता है। उनकी कठिनाइयों को भी समझा जाना चाहिए।

3-संचार माध्यमो को सूचित करने की मौजूदा व्यवस्था बहुत धीमी और असंतोषजनक है। ऐसे में एक उच्चस्तरीय मीडिया प्रवक्ता बनाया जाना चाहिए जिसकी पहुंच श्रीनगर, जम्मू तथा दिल्ली में सूचना के सभी स्रोतों और निर्णय लेने की प्रक्रियाओं तक हो।

4-ऐसे अधिकारी और उसके सहायकों तक पहुंचना आसान होना चाहिए और सूचना देने के साथ पत्रकारों को घटनास्थल तक पहुंचाने के लिए एक हेलीकाप्टर तथा कुछ जीपें उपलब्ध करानी चाहिए। साथ ही उच्च स्तरीय मीडिया प्रवक्ता का अर्थ यह नहीं चाहिए कि पत्रकार राज्यपाल या शीर्ष लोगों से नही मिल सकेंगे। इसी तरह मीडिया संबंधी व्यापक नीति बनायी जानी चाहिए और पत्रकारों का अंतर प्रादेशिक आदान-प्रदान भी किया जाना चाहिए।

5-आपत्तिजनक लेखन की अवधारणा को साफ तौर पर परिभाषित करने के साथ उनको ठीक से समझा जाना चाहिए। ऐसे लेखन को रोकना है तो सेंसर उसका कोई विकल्प नहीं है। ऐसे मामलों में कार्रवाई देश के सामान्य कानून के तहत की जानी चाहिए।

6-पत्रकारों तथा समाचार पत्रों को सभी पक्षों तथा घटनाओं की समुचित व तथ्यपरक रिपोर्ट देनी चाहिए जिसमें स्रोतों की भी जानकारी दी जाये। व्यावसायिक कठोरता व हिम्मत के साथ तथ्यों की जांचकर यथासंभव आंखो देखा हाल बयान करना चाहिए। लेकिन दर्दनाक घटनाओं का विवरण संयम व सादगी के साथ किया जाये और अफवाह व गलत तथ्यों से बचा जाये। गलत तथ्यों पर खंडन तथा स्पष्टीकरण भी प्रकाशित करना चाहिए।

7-समाचार पत्रों में साप्रदायिक व प्रादेशिक आधार पर ध्रुवीकरण जैसे दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति में विवेकपूर्ण प्रयास करना चाहिए। अविश्वासपूर्ण माहौल में स्वतंत्र व निष्पक्ष प्रेस नहीं फल फूल सकता है। हालांकि कश्मीर समिति ने भी माना था कि जोखिम पेशे का अभिन्न अंग है लिहाजा पत्रकारों को जोखिम उठाने के लिए तैयार रहना

चाहिए। हम कितना भी चाहें संपूर्ण सुरक्षा की व्यवस्था नहीं हो सकती है। साथ ही समिति ने यह भी कहा था कि पत्रकारों का चयन सावधानी से किया जाना चाहिए और उनकी सुविधाओं यात्रा भत्ता, विशेष भत्ता अन्य लाभ तथा बीमा कवर भी देना चाहिए। रात-बेरात काम करनेवाले पत्रकारों को परिवहन तथा सुरक्षित स्थान उपलब्ध कराना तथा घटनास्थल पर जाने के लिए सरकारी समर्थन जैसी बातें भी कही गयी थीं। पर इन सिफारिशों पर अमल नहीं हुआ। अगर इन बातों को सरकार और मीडिया प्रतिष्ठानों ने स्वीकार लिया होता तो तस्वीर काफी कुछ बदल सकती थी।

पूर्वोत्तर और अतीत का पंजाब

पूर्वोत्तर में भी पत्रकारों की कार्यदशाएं काफी खराब हैं। असम में वर्ष 2006 में उल्फा ने जिस तरह से पत्रकारों को धमकी दी और वरिष्ठ संपादकों निशाना बनाया उसकी देशव्यापी निंदा हुई थी। पूर्वोत्तर राज्यों में मीडिया पर बढ़ते हमले और धमकियों को स्वतः संज्ञान में लेते हुए भारतीय प्रेस परिषद ने एक मूल्यांकन समिति भी गठित की थी जिसने अक्टूबर 2007 में अपनी रिपोर्ट दी। यही नहीं केंद्रीय गृह मंत्रालय तथा सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय ने भी पूर्वोत्तर के पत्रकारों को यथासंभव सुरक्षा देने के लिए असम सरकार को वर्ष 2007 में पत्र भी लिखा। मणिपुर में आतंकवादियों की धमकियों के विरोध में एक दिन अखबार भी नहीं छपे। उग्रवादियों ने वहां एक अखबार के संपादक को डाक के जरिए एक छोटा ग्रेनेड भेजा था पर संयोग से यह फटा नहीं था। मणिपुर में पत्रकार लंबे समय से भारी असुरक्षा में जी रहे हैं। वहां पर पुलिस आसानी से पत्रकारों को उग्रवादियों का एजेंट घोषित कर उनका उत्पीड़न करती है। हाल में पत्रकारों की एक बैठक में दो पत्रकारों को ऐसे ही मामले में हिरासत में लेने की घटना पर नाराज पत्रकारों ने सरकारी खबरों के बायकाट का फैसला किया है। असम में तो 1990 के बाद 16 से अधिक पत्रकार जान से हाथ धो बैठे हैं और कई गंभीर रूप से घायल हुए।

पंजाब में आतंकवाद का दौर कब का समाप्त हो गया और आज काफी कुछ बदल गया है, पर पुराने दौर में कई पत्रकारों तथा उनके परिजनों को आतंकवादियों और पुलिस दोनों से उत्पीड़ित होना पड़ा। खास तौर पर पंथक कमेटी (सोहन सिंह) द्वारा 22 नवंबर 1990 को घोषित सिख पैनल कोड को सभी अखबारों के दफ्तरों में भेज कर पत्रकारों को यह धमकी दी गयी कि इसकी नाफरमानी की सजा मौत होगी। यह सब उस दौर में हुआ था जब पंजाब में सेना तक तैनात थी। पैनल कोड में कहा गया था कि खलिस्तान के लिए लड़ रहे उग्रवादियों को खाड़कू, जंगजू या स्वतंत्रता सेनानी लिखा जाये और पाकिस्तान स्थित पंथक कमेटी लिखने के बजाय सिर्फ पंथक कमेटी लिखा जाये। दूरदर्शन पर तमाम कैप्शन पंजाबी में होने चाहिए और आतंकी ढांचे की कमजोरी या कमियों के बारे में नहीं लिखा जाये। इस संहिता में यह भी कहा गया था कि सजा ए मौत पानेवाला पत्रकार सिर्फ पंथक कमेटी अपील करेंगे कहीं और नहीं। पंथक कमेटी के इस संहिता का पालन न करने पर सबसे पहले आकाशवाणी चंडीगढ़ के निदेशक राजेंद्र कुमार तालिब और फिर कई लोगों की हत्या की गयी। कई अखबारों ने आतंकवादियों को खाड़कू लिखना भी शुरू कर दिया। चंडीगढ़ के सभी अखबारों को सुक्खा-जिंदा का एक बयान अक्षरशः पूरे पृष्ठ पर छापने को विवश किया गया। हिंद समाचार पत्र समूह के संस्थापक लाला जगत नारायण समेत छह दर्जन लोग मारे गए जिसमें अखबार के हाकर से लेकर पत्रकार तक शामिल है। इसमें से 15 लोग तो पत्रकार ही थे। 12 मई 1984 को रमेश चंद्र की भी उग्रवादियों ने हत्या कर दी थी। कई पत्रकार पुलिस के दम और ज्यादतियों का शिकार बने।

आंतरिक सुरक्षा में सेना और मीडिया

भारत में आंतरिक सुरक्षा में काफी पहले से सेना तैनात होती रही है। अंग्रेजी राज में तो नागरिक आंदोलनों से निपटने के लिए सेना को तैनात कर देना आम बात थी। आजादी के बाद आंतरिक सुरक्षा में सेना की तैनाती बहुत कम कर दी गयी। फिर भी भारत पाक विभाजन के साथ ही दिल्ली और पूर्वी पंजाब समेत कई इलाकों में तैनात करने के साथ उसे विशेष शक्तियां प्रदान की गयीं। सेना 1953 में नागालैंड, 1965 में मणिपुर, 1978 में त्रिपुरा तथा 1996 में मिजोरम में उग्रवाद से निपटने के लिए तैनात की गयी। 1990 से जम्मू-कश्मीर में भी सेना की तैनाती की गयी। पंजाब में आतंकवाद के दौरान लंबे समय तक सेना तैनात रही। इसी तरह गोवा में सैन्य आपरेशन के मामले में भी सेना तैनात की गयी थी पर तब सेनाध्यक्ष ने उसे इस खास हिदायत के साथ भेजा था कि नागरिकों को किसी भी हालत में बचाना होगा। हमारे यहां सेना का रिकार्ड बेहतर है, पर अपवादों की भी कोई कमी नहीं है। इसी प्रकार शुरुवाती तेलंगाना संघर्ष के दौरान भी 13 माह तक सेना तैनात थी। हाल में नक्सली इलाकों में सेना तैनाती को लेकर भी काफी बहस चली है पर अंततोगत्वा फैसला लिया गया है कि इन क्षेत्रों में सेना की तैनाती नहीं की जाएगी।

यह चर्चा लंबे समय से चल रही है कि सभी इलाज सेना की मदद से नहीं करना चाहिए। फिर भी बात-बात पर सेना की तैनाती की मांग उठती रहती है। कुछ माह पूर्व राजस्थान में गूजर आंदोलन से निपटने के लिए सेना लगा दी गयी। इसी तरह तस्लीमा नसरीन की वीजा अवधि बढ़ाए जाने के खिलाफ हिंसक प्रदर्शनों को नियंत्रित करने के लिए भी कोलकाता में 21 नवंबर 2007 को सेना बुला ली गयी। दंगे विद्रोह नहीं है लिहाजा सेना को उसे रोकने के लिए तैनात नहीं किया जाना चाहिए। ज्यादा तैनाती से सेना और समाज के रिश्ते में दरार पड़ सकती है और सेना भी सुपर पुलिस जैसी बन जाएगी और उसके मनोबल पर बुरा असर पड़ेगा जिसके लक्षण साफ दिख भी रहे हैं। तमाम सैनिक तनाव और दबाव में खुद को गोली मार कर आत्महत्या करने लगे हैं जबकि कई अपने अफसरों पर हमला कर चुके हैं। इस मनोदशा के बीच में खाली हाथ घूम रहे पत्रकारों के साथ उनका कैसा बर्ताव हो सकता है, इसका भी अंदाजा लगाया जा सकता है? मैंने कश्मीर पूर्वोत्तर ही नहीं दक्षिण एशिया में कई अशांत इलाकों में भ्रमण के दौरान काफी कुछ कटु अनुभव किया है।

आतंकवादियों से निबटने के लिए पूर्वोत्तर राज्यों पर लागू सशस्त्र सेना (विशेष शक्तियां) अधिनियम 1958 तथा जम्मू-कश्मीर पर लागू सशस्त्र सेना (जम्मू तथा कश्मीर) विशेष शक्तियां अधिनियम 1990 के तहत अशांत क्षेत्रों में सशस्त्र सेनाओं के सदस्यों को पर्याप्त रूप से विशेष शक्तियां मिली हुई हैं। इन शक्तियों ने कई मौकों पर मानव अधिकारों का गला घोंटा है। इसी नाते इस अधिनियम की समीक्षा के लिए 19 नवंबर 2000 को सुप्रीम कोर्ट के पूर्व न्यायाधीश न्यायाधीश न्यायमूर्ति बी.पी.जीवन रेड्डी की अध्यक्षता में एक समिति का गठन भी किया गया था। इस समिति में विधिशास्त्री डा.एस.सी.नाकड़े, पूर्व प्रशासनिक अधिकारी पी.पी.श्रीवास्तव, ले.जनरल (सेनि) वी.आर.राघवन तथा पत्रकार संजय हजारिका सदस्य थे। प्रयास यह किया गया था कि इस अधिनियम के स्थान पर वैकल्पिक मानवोचित अधिनियम लाने के लिए बेहतर सुझाव दिया जाए। पर इस पर काम के बाद भी बहुत आगे नहीं बढ़ पायी। बाद में सेना के ही अधीन काम करने वाले असम रायफल्स को दिए गए विशेषधिकार के खिलाफ 2004 में मणिपुर में जैसी जन बगावत हुई थी उसे पूरी दुनिया देख चुकी है। इसके बाद फिर सशस्त्र बल विशेषधिकार कानून को लेकर देशव्यापी बहस छिड़ी और समीक्षा समिति बनी। इसकी सिफारिश के बाद भी इस कानून को आतंकवाद या उग्रवाद की आड़ में जीवित रखा जा

रहा है। अपवाद स्वरूप उदारता भी दिखायी गयी है पर एक मात्र एक शहर तक।

मीडिया को भारतीय सेना से संबंधित जानकारियां रक्षा मंत्रालय के अधीन जनसंपर्क निदेशालय से मिलती है। सन् 1947 से ही सेना कमानों में जन संपर्क अधिकारी की नियुक्ति की गयी थी पर सन् 1959 से प्रचार संबंधी सारे मुख्य कार्य दिल्ली के हवाले कर दिए गए। हालांकि सेना का जनसंपर्क तंत्र देश के सभी प्रमुख क्षेत्रों में सक्रिय है। मैंने करीब 14 वर्षों तक रक्षा मंत्रालय कवर किया है और उसका मान्यता प्राप्त पत्रकार भी रहा हूं। देश के तमाम हिंसाग्रस्त इलाकों को भी करीब से देखा है। पर मेरा तजुर्बा यही है कि सेना से सामान्य सूचनाएं हासिल करना भी बहुत कठिन काम है। खास तौर पर हिंदी या भाषाई पत्रकारों के लिए तो कई बार असंभव।

रक्षा मंत्रालय के जनसंपर्क निदेशालय का प्रभारी सिविल अधिकारी होता है पर उसकी वास्तविक कमान सेना के अधिकारियों के हाथ में होती है। भारत सरकार से मान्यता प्राप्त पत्रकारों के लिए भी तीनों सेनाओं के जनसंपर्क अधिकारी के कार्यालय तक पहुंचना कठिन है। रक्षा मंत्रालय में केंद्रीय गृह मंत्रालय द्वारा पत्रकारों को दिया गया वह सुरक्षा कार्ड भी मान्य नहीं है, जिनसे वे सभी मंत्रालयों में आसानी से जा सकते हैं। रक्षा मंत्रालय का मीडिया का अलग कार्ड है और पत्रकार सूचना या संदर्भों के लिए रक्षा मंत्रालय के पुस्तकालय में भी नहीं जा सकते हैं।

सरकारी गोपनीयता कानून बनाम मीडिया

सेना, अर्धसैन्य बल तथा पुलिस भारतीय सरकारी गोपनीयता अधिनियम 1923 को ढाल बनाकर राष्ट्र की संप्रभुता, अखंडता और सुरक्षा जैसे सवाल को आगे रखकर पत्रकारों को जानकारी देने से लंबे समय से कन्नी काटती रहती है। अंग्रेजों की यह विरासत समय बदलने के साथ ब्रिटेन में काफी बदली जा चुकी है पर भारत में सूचना अधिकार कानून के बाद भी हालत में आमूल चूल बदलाव आना बाकी है। भारतीय प्रेस परिषद ने 1990 में इस अधिनियम को पूरी तरह निरस्त करने की वकालत के साथ कहा था कि यह अधिनियम एक पारदर्शी सरकार की ही अवधारणा के विपरीत है, पर सरकार ने इसे नहीं माना। 24 अगस्त 2005 को तत्कालीन केंद्रीय गृह राज्यमंत्री श्रीप्रकाश जायसवाल ने एक सवाल के जवाब में साफ कहा कि यह अधिनियम कानूनी संवीक्षा पर खरा उतरा है। अधिनियम में संशोधन के मुद्दे पर समय-समय पर जांच की गयी है, पर यह निर्णय लिया गया है कि इसमें संशोधन करने या बदलने की जरूरत नहीं है। इसी तरह सूचना अधिकार कानून के दायरे में सेनाएं रहें या नहीं इस पर काफी बहस खुद शीर्ष सेनाधिकारी चला चुके हैं। तीनों सेनाओं की आपत्ति के बाद रक्षा मंत्रालय ने केंद्रीय अर्धसैन्य बलों की तरह सेनाओं को भी कानून की दूसरी अनुसूची में डालने के लिए केंद्रीय कार्मिक, जनशिकायत व पेंशन मंत्रालय को लिखा गया। यह बहस और सोच कुछ और नहीं बल्कि मानसिकता को दर्शाती है। सरकारी गोपनीयता के आड़ में तमाम जनता के महत्व की सूचनाएं छिपाना शीर्ष नौकरशाही की आदत बन गयी है। सरकारी गोपनीयता के आड़ में तमाम जनता के महत्व की सूचनाएं छिपाना शीर्ष नौकरशाही की आदत बन गयी है। सरकारी गोपनीयता के वर्गीकरण पर खुद तत्कालीन थल सेनाध्यक्ष जनरल के.सुंदरजी ने फरवरी 1991 में जो टिप्पणी की थी वह देखने में रोचक भले लगे पर जमीनी हकीकत को दर्शाती है—

सच्चाई यह है कि हमारी वर्गीकरण व्यवस्था इतनी भयानक है कि प्रायः मैं यह सोचता हूं कि यदि आज मैं लम्बे समय तक साउथ ब्लाक में बैठा रहता तो मुझ पर ही अत्यंत गोपनीय की मोहर लगा दी जाती।

यह सुपरिचित तथ्य है कि हिंसाग्रस्त इलाकों में गोपनीयता कानून की आड़ में बहुत सी ऐसी बातों को

भी छिपाया जाता है जिनके सार्वजनिक करने में कोई समस्या नहीं होती। बहुत सी जगहों पर तो पत्रकारों को जाने की अनुमति ही नहीं दी जाती है। ऐसे इलाकों में अधिकारी मनोवैज्ञानिक दबाव पैदा करने के साथ ऐसा बोध कराते हैं गोया वहां उनका ही कानून है। और वे मीडिया की स्वतंत्रता या मानव अधिकारों से कहीं ऊपर हैं। यह जरूर है कि खास तौर पर राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के गठन के बाद काफी जागरूकता आयी है और सेना तथ अर्धसैन्य बल मानव अधिकार उल्लंघन के मामलों को गंभीरता से लेने लगे हैं। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के गठन के वर्ष ही 1993 में भारतीय सेना मुख्यालय में मानवाधिकार प्रकोष्ठ का गठन किया गया था और सैनिकों के लिए खास तौर पर मानवाधिकारों के लिए क्या करें क्या न करें सूची तथा दिशानिर्देश अपने पास रखना अनिवार्य कर दिया गया। बेशक सैनिक मानवाधिकारों के प्रति संवेदनशील हो रहे है, पर असली संवेदनशील तो अफसरों को होना है। उनको यह भी ध्यान में रखना होगा कि जन जागरूकता भी बढ़ रही है और मानव अधिकार के मामलों में मीडिया पहले से भी अधिक सतर्क हो गया है और इससे तमाम मामलों का परदाफाश हो रहा है। मीडिया की सुर्खियों के चलते ही प्रधानमंत्री के निर्देश पर 23 नवबंर 2005 को केंद्रीय गृह मंत्रालय के सचिव वी.के.दुग्गल की अध्यक्षता जम्मू कश्मीर में सुरक्षा बलों द्वारा मानवाधिकारों से संबंधित सभी मामलों को पारदर्शी बनाने, सुरक्षा बलों को संवेदनशील बनाने, सर्च, रात्रि कार्फ्यू और अन्य मामलों में नयी प्रक्रिया तैयार करने के साथ संचार माध्यमों की भूमिका पर भी चर्चा की गयी।

मुंबई की घटनाएं और मीडिया का आत्मचिंतन

वर्ष 2008 में मुंबई में घटी आतंकवादी घटना के कवरेज को लेकर पूरी दुनिया में भारत का मीडिया कटघरे में खड़ा कर दिया गया था। खास तौर पर टीवी चैनलों की भूमिका की तो सर्वत्र निंदा की गयी थी। इन चैनलों ने लाइव कवरेज के नाम पर करीब 60 घंटे का रियलिटी शो या टेरर रियलिटी शो दिखाकर देशभर में न केवल दहशत और सनसनी फैलायी बल्कि सेना और सुरक्षा बलों के काम काज में भी गंभीर रूकावट पैदा की। यह सवाल भी खड़ा हुआ कि आतंकवादी हमले को नियंत्रित करने के लिए क्या-क्या किया जा रहा है। इसे पूरी दुनिया को दिखाने से किसका हित सधता है? मुंबई की घटना को लेकर खुद मीडिया के लोगों ने माना कि कई शीर्ष चैनलों तक ने टीआरपी बढ़ाने के लिए सारी हदें पार कर दी थी। उनकी हरकतों से ताज होटल में फंसे बंधकों तथा सुरक्षा बलों की जान को भारी खतरा पैदा हो गया था। यही नहीं इस होड़ में कई गलत खबरें भी प्रसारित की गयीं।

इस घटना को केंद्र में रखते हुए एम.वेंकैया नायडू की अध्यक्षता वाली राज्यसभा की याचिका समिति ने मीडिया पर संवैधानिक नियंत्रण की वकालत तक कर डाली और कहा कि लाइव फुटेज का उन लोगों द्वारा गलत इस्तेमाल किया जा सकता था जो दूर से बैठकर आतंकवादियों को निर्देश दे रहे थे। समिति की रिपोर्ट में कहा गया कि घटनास्थल पर कमांडो उतारे जाने के लाइव फुटेज का प्रसारण न केवल सुरक्षा एजेंसियों बल्कि देश के सुरक्षा तंत्र के लिए खतरनाक था। सरकार की एडवायजरी जारी करने के बाद कुछ चैनलों ने लाइव फुटेज दिखाना कुछ समय के लिए बंद तो कर दिया पर घटना के दौरान चैनलों का आत्मनियंत्रण काम नहीं कर रहा था। ऐसे में उन पर एक किस्म का संवैधानिक नियंत्रण जरूरी है चौतरफा आलोचनाओं के बाद मीडिया ने इस कवरेज को लेकर आत्ममंथन भी किया और माना कि उस दौरान का कवरेज अनाड़ी की तरह था। साथ ही यह भी कहा गया कि संकट का कवरेज करने वालों में प्रशिक्षण की कमी, एंकरों द्वारा व्यावसायिकता तथा निजी पूर्वाग्रहों के बीच की सीमाएं लांघना और व्यावसायिक

दबाव जैसी बातें भी इसके लिए जिम्मेदार थीं। इस बात के लिए भी दबाव बना कि आपदा की स्थिति में मीडिया की क्या भूमिका हो इस पर दिशानिर्देश तैयार किया जाये। लेकिन आरोपों की कड़ी यहीं समाप्त नहीं होती है। अपराधियों के महिमामंडन से लेकर तमाम आरोप मीडिया पर लगते हैं साथ ही यह भी कहा जाता है कि कुछ खास वर्गो के साथ उसका रवैया पक्षपात भरा होता है। सांप्रदायिक हिंसा के दौरान भी मीडिया पर उंगलियां उठती हैं। पर यह सब एक पक्ष है। असली जमीनी हकीकत अलग है। मीडिया के सामने भी कई तरह की दिक्कतें और समस्याएं हैं। मुंबई में टीवी चैनलों ने जो कुछ किया उसी आधार पर पूरी मीडिया को कोसा नहीं जा सकता है।

पुलिस और प्रेसः छत्तीस का आंकड़ा

देश के तमाम हिस्सों में पुलिस के साथ प्रेस का बहुत तनावपूर्ण संबंध बन गया है। बलात्कार, नरसंहार, कानून व्यवस्था की खराब हालत आदि पर जब पत्रकार लिखते हैं तो पुलिस के बड़े आकाओं की आंख की किरकिरी बनते हैं। आज मीडिया की पहुंच दुर्गम इलाकों तक हो गयी है और वहां भी संवाददाताओं का जाल बिछा हुआ है। भारत में मानवाधिकारों के संरक्षण का एक अहम दायित्व पुलिस पर भी है। यही देश में कानून व्यवस्था को बनाए रखने की महत्वपूर्ण मशीनरी है। पुलिस के पास गिरफ्तार करने, तलाशी लेने, सामान जब्त करने, अदालत में फौजदारी मामला दायर करने जैसे अधिकार होते हैं। फिर भी यह सच्चाई भी अपनी जगह है कि उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में थानों में प्राथमिकी दर्ज करना मुश्किल है क्योंकि थाना प्रभारी अपने इलाकों में अपराध की दर कम रखना चाहते हैं। जब मीडिया ऐसे मामलों की रिपोर्ट करता है तो पुलिस के साथ एक तनाव पैदा होता है। इसी तरह जेलें या जेल जैसे संगठन मीडिया से खुद को हमेशा से दूर रखते आए हैं। उनमें पारदर्शिता के अभाव के कारण बहुत सी खबरें अखबारों में नमक मिर्च लगाकर छपती हैं। संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची-2 की प्रविष्टि के अनुसार जेल राज्य का विषय है। यहां मीडिया और जेल तंत्र के साथ संवाद का अभाव है और इसे दूर किया जाना चाहिए। मीडिया को भी इस बात की इजाजत मिलनी चाहिए कि वह समय-समय पर समूहों के साथ जेलों का दौरा करके वास्तविक दशा का वर्णन करे। इसी तरह बाल संरक्षण गृह, महिला संरक्षण गृह और ऐसी अन्य संस्थाओं का कार्यकरण भी पारदर्शी होना चाहिए।

सांप्रदायिकता का प्रश्न और मीडिया

भारत में संवेदनशील मौकों और खास कर भाषाई, जातीय या सांप्रदायिक दंगों के दौरान सुरक्षा बलों और मीडिया दोनों की भूमिका पर सबसे ज्यादा सवाल खड़े होते हैं। अयोध्या कांड को लेकर हिंदी के कई अखबारों को भारतीय प्रेस परिषद ने जांच पड़ताल करके न सिर्फ कटघरे में खड़ा किया था बल्कि उनकी घोर निंदा की थी। इसी तरह गुजरात के दंगों में स्थानीय गुजराती अखबारों और कई चैनलों पर खुद एडीटर्स गिल्ड आफ इंडिया तक ने उंगली उठायी थी। इसी तरह सहस्त्राब्दी के पहले बड़े दंगे यानि 2002 के दौरान घटे गोधरा कांड और उसके बाद हुए गुजरात के दंगों में सरकारी आंकड़ों के मुताबिक इस दंगे में 254 हिंदू और 790 मुसलमान मारे गए थे। घायलों की संख्या 2548 रही थी। जबकि 919 औरतें विधवा और 606 बच्चे अनाथ हो गए। सैकड़ों घर और पूजास्थल ध्वस्त हो गए और करीब 1.40 लाख लोगों का पलायन हुआ। गुजरात के दंगों में जिम्मेदार और गैरजिम्मेदार दोनों ही भूमिका में मीडिया दिखा। खास तौर पर दंगों का लाइव कवरेज भारत में लोगों ने पहली बार देखा और इसे दंगा और भड़काने का अहम कारक भी माना गया। कुछ टेलीविजन चैनलो ने तो आग में घी डालने का काम किया, जबकि कुछ

अखबार भी काफी असंयत हो गए थे। गुजरात हिंसा के तांडव को पहला टेलीवाइस दंगा करार दिया गया। खुद राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की रिपोर्ट में यह टिप्पणी की गयी कि-

आयोग मीडिया के साहसी और अन्वेषणात्मक भूमिका के पक्ष में है। साथ ही उसका मत है कि मीडिया को स्व नियंत्रण आधार पर अपना आचार-व्यवहार सांप्रदायिक हिंसा और उत्तेजक परिस्थितियों में संयत रखना चाहिए ताकि सुनिश्चित हो सके कि भावनाएं न भड़कें और हिंसा न फैले।

अयोध्या आंदोलन के दिनों में खास कर 1989-92 के बीच में कई अखबारों ने विध्वसंक भूमिका निभायी। खुद विश्व हिंदू परिषद ने पत्रकारों का वर्गीकरण रामभक्त और रामद्रोही पत्रकारों के रूप में किया था। जो अपने विवेक को आगे रख कर सच्चाई लिखते थे वे रामद्रोही पत्रकारों की कोटि में थे। इसी कारण 1992 में बाबरी मस्जिद ध्वंस के समय सबसे ज्यादा वही पत्रकार पीटे गए थे जो कि विहिप की इच्छानुसार नहीं लिखते थे। इसी तरह 70 के दशक तक दंगो या जातीय झगड़ों में मीडिया बहुत संयम बरतता था और खबरों में गुटों या समुदायों का ही जिक्र किया जाता था। पर अब खुलेआम हिंदू-मुसलमान, हरिजन और यादव लिखने में संकोच नहीं किया जाता है। पश्चिमी उ.प्र. में भोपा कांड तथा पनवारी और कुम्हेर (राजस्थान) के जाट-जाटव दंगों में मीडिया ने सीधे जातियों का नाम देकर कवरेज किया और यहां दंगे रोकने के लिए सेना तक की मदद लेनी पड़ी। गांवो में दंगे बहुत मामूली बात पर हुए थे और वे शांत हो जाते पर वाद विवाद और बयानबाजियों का मोरचा खोलकर मीडिया ने इनको और भड़का दिया। ऐसे मामलों में मीडिया को और सावधानी बरतनी चाहिए। वहीं पुलिस को भी संयम से काम लेना चाहिए और समझना चाहिए कि मीडिया का भी अपना दायित्व और काम है।

आचार संहिता और प्रशिक्षण की जरूरत

हाल के वर्षो में कई बार यह बहस चली है कि मीडिया के लिए सरकारी स्तर पर आचार संहिता या कानून बनाया जाना चाहिए ताकि उसे नियंत्रित किया जा सके। ये चर्चाएं खास तौर पर ऐसे दौर में ज्यादा होती हैं, जब मीडिया की ओर से गैर जिम्मेदाराना हरकतें होती हैं। बेहतर होगा पत्रकार संगठन स्वयं इस दिशा में आगे पहल करें और नयी चुनौतियों के आलोक में अपने लिए आचार संहिता बना लें। आचार संहिता मीडिया के लिए कोई नयी बात नहीं है। पूर्व में इस पर काफी बहस हो चुकी है। सबसे पहले अखिल भारतीय संपादक सम्मेलन ने 1950 में एक आचार संहिता स्वीकार करने का फैसला किया था। इसके बाद कई और पत्रकार संस्थाओं ने भी ऐसी पहल की। अखिल भारतीय संपादक सम्मेलन द्वारा तेयार की गयी आचार संहिता के प्रमुख बिंदु आज भी सभी पत्रकारों के लिए मार्गदर्शक है। इनमें से कुछ बिंदु इस प्रकार हैं।

1. समाचार देते समय पत्रकार न्यायनिष्ट रहें।

2. जातीय, धार्मिक और आर्थिक मामलों समय विशेष सावधानी तथा निष्पक्षता बरती जाय।

3. समाचारों में तथ्यों को तोडा मरोड़ा न जाये न कोई सूचना छिपायी जाये।

4. व्यावसायिक गोपनीयता का निष्ठा से अनुपालन।

5. रिश्वत लेकर समाचार छापना या न छापना अवांछनीय, अमर्यादित और अनैतिक है।

6. किसी के व्यक्तिगत जीवन के बारे में अफवाह फैलाने के लिए पत्रकारिता का उपयोग नहीं किया जाये। यह पत्रकारिता की मर्यादा के खिलाफ है। अगर ऐसा समाचार छापने के लिए जनदबाव हो तो भी पत्रकार पर्याप्त संतुलित रहे।

इसी प्रकार भारतीय प्रेस परिषद अधिनियम 1978 की धारा 13 (2) ख में परिषद को रिपोर्टिंग के स्तर को बनाए रखने तथा उसमें सुधार के लिए पत्रकारों को

सहायता एवं मार्गदर्शन के लिए आचार संहिता बनाने का काम भी सौंपा गया था। 1995 में परिषद ने सिद्धांतों का एक संकलन प्रकाशित किया था।

इसका नवीनतम संस्करण जनवरी 2005 में प्रकाशित किया गया। प्रेस परिषद ने पत्रकारिता के लिए जो प्रमुख सिद्धांत जारी किए, वे इस प्रकार हैं-

1. प्रकाशन से पूर्व खबरों का सत्यापन, सनसनी और भड़कानेवाले शीर्षकों से बचना।

2. मानहानिजनक लेखन के प्रति विशेष सावधानी-निष्पक्षता पर विशेष जोर।

3. निजता पर प्रहार से बचना।

4. त्रुटियों का संसोधन और खेद प्रकाश।

5. अनुमान, अटकलों तथा टिप्पणी पर महत्व न देना।

6. हिंसा और अपराधियों के महिमामंडन पर रोक।

7. न्यायिक गतिविधियों की आलोचना में सावधनी।

8. समाचारो की भाषा संयमित हो तथा सांप्रदायिक लेखन न हो।

कुछ साल पहले तत्कालीन राष्ट्रपति एपीजे अब्दुल कलाम के हस्ताक्षर से एडीटर्स गिल्ड आफ इंडिया ने एक पत्रकार व्यवहार संहिता भी जारी की थी। इसमें भी काफी मनन के बाद कई बिंदुओं को शामिल किया गया था। कुछ प्रमुख बातें इस प्रकार हैं—

1. पर्याप्त समय सीमा के तहत पीड़ित पक्ष को अपना जवाब देने या खंडन करने का मौका दें।

2. किसी खबर में लोगों की दिलचस्पी बढ़ाने के लिए उसमें अतिशयोक्ति से बचें।

3. निजी दुख वाले दृश्यों से संबंधित खबरों को मानवीय हित के नाम पर आंख मूंद कर न परोसा जाये। मानवाधिकार और निजी भावनाओं की गोपनीयता का भी उतना ही महत्व है।

4. धार्मिक विवादों पर लिखते समय सभी संप्रदायों और समुदायों को समान आदर दिया जाना चाहिए।

5. अपराध मामलों में विशेष रूप से सेक्स और बच्चों से संबंधित मामले में यह देखना जरूरी है कि कहीं रिपोर्ट ही अपने आप में सजा न बन जाये और किसी जीवन को अनावश्यक बर्बाद न कर दे।

हाल की कई घटनाओं के आलोक में फरवरी 2006 में एडीटर्स गिल्ड आफ इंडिया द्वारा वरिष्ठ पत्रकार अजीत भट्टाचार्यजी के नेतृत्व में पत्रकारिता में पारदर्शिता और जवाबदेही तय करने के लिए गठित एक समिति की सिफारिशों में कई अहम बातें सामने आयी हैं। मैं नहीं समझता कि किसी भी पत्रकार को इसे मानने में कोई संकोच होगा। इस कदम से अखबार अपनी विश्वसनीयता को बरकरार रखते हुए पाठकों की शिकायतों को दूर कर सकते हैं और खबरों को गलत होने से बचा सकते हैं। प्रमुख सिफारिशें इस प्रकार हैं—

1. अखबार समूह अपने अखबारों के अंदर ही ओम्बुड्समैन की नियुक्ति करें, जो संपादकीय और व्यापारिक नियंत्रण से मुक्त हों। ये गलत रिपोर्टिंग या पक्षपातपूर्ण खबरों के प्रकाशित करने के आरोपों की निष्पक्ष जांच करें।

2. संपादकीय विभाग अपने कर्मचारियों के लिए एक आचार संहिता लागू करे और जरूरत पड़ने पर सूत्रों के खुलासे का प्रावधान हो।

3. अगर खबरें गलत साबित हो जायें तो अपनी गलती तुरंत माने और सही तथ्य प्रमुखता से प्रकाशित करें।

4. वित्तीय अखबार अपनी रिपोर्टिंग और अपने विचारों को निजी हितों से दूर रखें।

आचार संहिता की दिशा में मीडिया संगठनों को आगे आने की जरूरत है। इसी तरह अगर वकील बनने के लिए कमसे कम विधि स्नातक बन कर बार काउंसिल में पंजीकरण जरूरी होता है और डाक्टर तथा सी.ए. बनने के लिए भी न्यूनतम मानक बने हुए हैं तो क्या पत्रकार बनने के लिए कोई न्यूनतम योग्यता नहीं होनी

चाहिए? क्या उनका कोई प्रशिक्षण जरूरी नहीं और हरेक को अखबार निकालने या चैनल चलाने की आजादी होनी चाहिए, यह बहस भी चल रही है। अगर मीडिया राजनेताओं, व्यापारियों, डाक्टरों, वकीलो और उद्योगपतियों के लिए ईमानदारी, निष्पक्षता और नैतिकता की बार-बार दुहाई देतें हैं तो पहले स्वयं उनको अपनी आचार संहिता बनाने और लागू करने की पहल करनी होगी।

एक जमाना वह भी था जब अखबार में छपी खबर ही प्रमाण मानी जाती थी। पर अब मीडिया पर चौतरफा उंगली उठने लगी हैं। ऐसे में मीडिया के लिए भी यह बेहतर होगा कि समय रहते वह अपनी खामियां और कार्यप्रणाली को सुधार ले, ताकि उसकी विश्वसनीयता और गरिमा बच सके। मीडिया से आम नागरिक निष्पक्षता, तटस्थता और प्रामाणिक समाचारों की अपेक्षा करता है।

हमारे यहां खास तौर पर अखबारों की निगरानी के लिए भारतीय प्रेस परिषद है, पर इलेक्ट्रानिक मीडिया के लिए ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। केवल सेवा के जरिए चलने वाले उपग्रह टीवी चैनलों के सभी कार्यक्रमों और विज्ञापनों को केबल टेलीविजन नेटवर्क (विनियमन) अधिनियम 1995 के तहत निर्धारित विज्ञापन संहिता और कार्यक्रम संहिता के प्रावधानों और उसके तहत बनाए गए नियमों का अनुपालन करने की हिदायत तो दी गयी है, पर दूरदर्शन को छोड़कर कोई इसे मानता नहीं है।

यह सच है कि आचार संहिता को लेकर कई बार तब बहस चली है, जब कोई अहम मुद्दा पत्रकारिता की गरिमा को ठेस पहुंचाता नजर आया। इसके पक्ष और विपक्ष में भी हमेशा से दो खेमे रहे हैं। पर अच्छे और सक्रिय संपादक तथा पत्रकार स्वपोषित और स्वघोषित आचार संहिता के हिमायती हैं। इसके साथ ही सर्व स्वीकृत आचार संहिता को पत्रकारिता प्रशिक्षण संस्थाओं का अनिवार्य हिस्सा बना देना चाहिए ताकि नए पत्रकार कुछ बुनियादी शर्ते भी तय की जानी चाहिए और मेडिकल काउंसिल और बार काउंसिल की तरह ही पत्रकारों के उचित पंजीकरण का प्रबंध भी भारतीय प्रेस परिषद के ही अधीन किया जाये ताकि कदाचार के दोषी या मानकों का उल्लंघन करने वाले पत्रकारों को दंडित किया जा सके।

खास तौर पर इलेक्ट्रानिक मीडिया से जुड़े युवा पत्रकारों के प्रशिक्षण का सवाल भी काफी अहम है। इलेक्ट्रानिक मीडिया के व्यापक विस्तार से चलते काफी संख्या में बिल्कुल युवा पत्रकारों को कठिन इलाकों में तैनात कर दिया जाता है। लेकिन उनको न तो ठीक से मार्गदर्शन दिया जाता है न ही प्रशिक्षण। इस नाते इन इलाकों में तैनात कर दिया जाता है। लेकिन उनको न तो ठीक से मार्गदर्शन दिया जाता है न ही प्रशिक्षण। इस नाते इन इलाकों में लंबे समय से काम कर रहे पत्रकारों तथा विशेषज्ञों की मदद से एक ठोस प्रशिक्षण तंत्र भी युवा पत्रकारों के लिए स्थापित करना चाहिए ताकि वे परेशानियों से बच सके। इसी तरह राज्य सरकारो, केंद्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, गृह मंत्रालय, गृह मंत्रालय तथा रक्षा मंत्रालय को भी पत्रकारों के प्रशिक्षण और मार्गदर्शन से जुड़े पहलुओं पर बारीकी से गौर करना चाहिए। इसी तरह मानव अधिकारों के हनन के लिहाज से संवेदनशील राज्यों के चुनिंदा जिलों में कस्बाई और जिला मुख्यालय के पत्रकारों की कार्यशाला आयोजित की जानी चाहिए। इन प्रयासों से निश्चय ही तस्वीर बदल सकती है।

❑

मृत्यु के समय का संभावित आकलन

डॉ. साहिब सिंह चाँदना

सहायक निदेशक (सीरम विज्ञान) अपराध विज्ञान प्रयोगशाला

मधुबन (करनाल) हरियाणा

61, ग्रीन पार्क, हिसार-125001 (हरियाणा)

न्यायविधि वैज्ञानिक के लिए मृत्यु के सही समय का आकलन करना एक जटिल प्रक्रिया परन्तु महत्वपूर्ण पक्ष है। विधि विज्ञान के आधार पर विधि वैज्ञानिक कानून को रचनात्मक सहायता करने में सहायक सिद्ध होते हैं। यदि हत्या के सही समय का पता चल जाए तो पुलिस को अपराधी तक पहुंचने में नई दिशा मिल सकती है। मृत्यु के सही समय का पता लगाने के लिए चिकित्सक मुख्यतः चार विधियों को प्रयोग में लाते हैं जिन्हें आर्युविज्ञान की भाषा में टी.एस.डी. पुकारा जाता है। इनमें से एक कारगर तकनीक है। इस विधि में एक थर्मामीटर मलाशय में गहराई तक डालकर शरीर का तापमान मापा जाता है क्योंकि मृत्यु के पश्चात शरीर में ताप का ठहराव अवरोधित हो जाता है। ज्यों-ज्यों समय बीतता है त्यों-त्यों बाह्य वातावरण के प्रभाव से उसी अनुपात में शरीर का तापमान घटता जाता है। सामान्य परिस्थितियों में जो अनुमान लगाया जा चुका है उसके अनुसार सर्द ऋतु में प्रत्येक घंटे में 1.5^0 F और ग्रीष्म ऋतु में 0.75^0 F डिग्री ताप का ह्रास होता है। एक सामान्य व्यक्ति का तापमान 98.4^0 F यानि कि 36.9^0 डिग्री सेल्सियस होता है। यदि सर्द ऋतु में एक लाश के मलाशय में किसी चिकित्सक की देह का तापमान 80^0 F मिलता है तो इसका अभिप्राय यह है कि 18.4^0 F डिग्री ताप का ह्रास हुआ अर्थात मृत्यु लगभग 12 घंटे पूर्व हुई। फारहनाईट से सेल्सियस अथवा रयूमर के लिए पारस्परिक परिवर्तन का सूत्र यह है :

$$\frac{F-32}{180} = \frac{C}{100} = \frac{R}{80}$$

शरीर में अकड़न :— ए.टी.पी. की कमी, लैक्टिक एसिड में वृद्धि और हाइड्रोजन के अणुओं में कटौती से शरीर में अकड़न छा जाती है। इसमें शरीर के दोनों प्रकार की एच्छिक व अनैच्छिक माँसपेशियाँ प्रभावित होती हैं। यह प्रक्रिया आँखों के परदों से प्रारम्भ होकर, निचला जबड़ा, गर्दन और चेहरे की माँसपेशियों से होती हुई नीचे ऊपरी बाहों, वक्ष की माँसपेशियों, उदर और पैरों से होकर नीचे अंगुलियों तक प्रवेश करती हैं। भारतवर्ष में अकड़न सर्दऋतु में 1 से 2 दिन तक रह सकती है परन्तु ग्रीष्मऋतु में 18 घंटों से $1^1/_2$ दिन तक व्याप्त रहती है। बच्चों और वृद्धों में अकड़न पूर्णरूपेण नहीं होती परन्तु व्यस्क व्यक्तियों में अकड़न अति प्रबल होती है। विभिन्न बीमारियाँ, करंट, आकाशीय बिजली और शरीर पर गहरे घावों के कारण भी अकउन शीघ्रता से पनपती है और ठहराव भी अधिक होता है। दम घुटने, अत्यधिक रक्त स्राव, निमोनिया, लकवा, अधरंग इत्यादि बीमारियों में अकड़न में देरी होने की संभावना होती है। सर्दऋतु में अकड़न देरी से पनपती है और ग्रीष्म ऋतु की अपेक्षा अधिक देरी तक रहती है। ग्रीष्म ऋतु में ए.टी.पी. के अधिक विखंडित होने से अकड़न तीव्रता से आती है और कम समय तक रहती है।

टी.एस.डी. परीक्षण में रीगर मोर्टिस अर्थात मृत्योपरांत कठोरता एक अन्य कारगर तकनीक है। इस विधि में शरीर के विभिन्न अंगों की कठोरता का आकलन किया जाता है। मृत्योपरांत माँसपेशियों में कुछ अद्वितीय परिवर्तन होने लगते हैं। इस प्रकार के परिवर्तन विभिन्न अंगों की मांसपेशियों में विभिन्न अंतरालों में कई प्रकार से होते हैं। जबड़े की माँसपेशियां मृत्य के दो घंटों के पश्चात सख्त हो जाती हैं। ऊपरी अंग 3-4 घंटे में और निचले

6-8 घंटे में और अंगुलियों और अंगूठो की मांसपेशियां लगभग 12 घंटे में सख्त होती हैं। सहसा मृतक व्यक्ति के अंग मोड़ना भी चाहे ता किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती। यदि मृत्यु थोड़ी देर पहले हुई हो तो अंगों को तत्काल व सरलता से मोड़ा नहीं जा सकता अपितु प्रतिरोध का सामना करना पड़ता है। यदि मृत्यु 4-6 घंटे पूर्व हुई हो तो ऊपरी अंगों में प्रतिरोध का सामना करना पड़ता है परन्तु निचले अंग सरलता से मुड़ जाते हैं।

मृत्यु के पश्चात मृतक के शरीर में अकड़न लगभग 4 घंटे बाद प्रारम्भ हो जाती है और लगभग 8 घंटे में पूर्णतया स्थापित हो जाती है और कुछेक घटनाओं में इस प्रक्रिया में 15 घंटे भी लग सकते हैं। उच्च दबाव, तापक्रम व विशेष क्षारीरियक विष स्ट्रिकनिन और कुछेक विशेष प्रकार की बीमारियाँ अकउन की प्रक्रिया को शीघ्रातिशीघ्र प्रारम्भ करने में सहायक हैं। ठंड और सड़न रोकने वाले रसायन व विष जैसे कि आरसेनिक, मरक्युरिक क्लोराइड इत्यादि से अकड़न देरी में होती है।

अकड़न स्वतः ही 3 दिनों में लुप्त हो जाती है, हालाँकि कुछेक परिस्थितियों में यह 4 दिन तक भी रहती है। अन्य परिस्थितियों में यह 20 घंटे तक भी रह सकती है। जब तक अकड़न बनी रहती है उतना ही समय उसके पनपने में लगता है। यही समय इस प्रक्रिया को विकसित होने के पश्चात खंडित होने में लगता है।

सड़न :—मृत शरीर के गलने-सड़ने की प्रक्रिया से भी मृत्यु के समय का आंशिक रूप में अनुमान लगाया जा सकता है। कई तथ्य जैसे कि तापमान (आदर्श तापमान 20-40^0 सैल्सियस), आद्रता, मृतक की शारीरिक रचना एवं स्वास्थ्य और बाह्य वातावरण भी उपरोक्त प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आंतरिक जीवाणु गलन-सड़न की प्रक्रिया में सहायक होते हैं परन्तु बाह्य जीवाणु अन्दर प्रवेश करके इस प्रक्रिया को तेज कर देते हैं। शरीर में मरकरीक्यूरिक क्लोराइड, एन्टीमनी व आरसेनिक इत्यादि विष से की भले ही गलने-सड़ने में देरी हो जाती है, परन्तु कुछेक बीमारियाँ इस प्रक्रिया में तीव्रता लाती है।

पोस्टमार्टम रंग परिवर्तन नामक रंग परिवर्तन में हृदय की धड़कन बन्द होने के कारण रक्त कोशिकाओं में एकत्रित रंग गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव से शनैः-शनैः नीचे आ जाता है और शरीर के सबसे निचले भाग में थोड़ा सा दबाव पड़ने पर त्वचा पर नीला-बैंगनीय उभर आता है। मृतक के नीचे वाले भाग में एक घंटे के अन्दर नीला-बैंगनीय रंग उभरता है के साथ-साथ यह दो घंटों में ही नीले बैंगनीय धब्बों के रूप में उभर आता है और ये धब्बे 4 घंटे में बड़े आकार के हो जाते हैं। यदि इस समय कोई व्यक्ति मृतक की हथेली पर एक मिनट तक दबाव बना डाले तो कुछ क्षण के लिए उपरोक्त धब्बे गायब हो जाएंगे परन्तु यदि 8 घंटों के पश्चात मृतक की हथेली पर दबाव डालने के पश्चात ये रंगीन धब्बे नहीं मिटते तभी तो इस अद्भुत तकनीक को पोस्टमार्टम रंग परिवर्तन की संज्ञा दी गयी है।

सड़न (Putrefaction) के कारण महिलाओं के शरीर के स्तन फैले हुए दिखायी पड़ते हैं और बाल हाथ लगाने पर ही बाहर निकल पड़ते हैं। दांतों में इतना ढीलापन आ जाता है कि ये स्वतः ही गिर सकते हैं। सड़ांध विधि द्वारा देर से आयी हुई लाशों की समस्याओं को हल करने में व्यापक रूप से सहायता मिलती है। मृत्यु के पश्चात सड़ांध तो होती है। मृत्यु के 18 घंटों के पश्चात मृतक के पेट के दाहिने भाग में परिवर्तन रंग हरेपन के रूप में झलक देता है। तीन दिनों के पश्चात नाखून इतने ढीले पड़ जाते हैं कि उन्हें सरलता से खींच कर शरीर से अलग किया जा सकता है। चार दिनों उपरांत जबड़े से दांत सरलता से बाहर खींचे जा सकते हैं। पाँच दिन के पश्चात मस्तिष्क गलने से इसका द्रव्य खोपड़ी में ही रिसने लगता है।

घडियां :—यदि मृतक व्यक्ति ने घड़ी पहनी हुई थी और वह लड़ाई-झगड़े में क्षतिग्रस्त हो गई हो तो इससे

मुठभेड़ के सही वक्त की जानकारी मिल सकती है और अन्तत्वोगत्वा 'मृत्यु कब हुई' की जानकारी मिल सकती है।

पेशाब की थैलियां :—यदि एक व्यक्ति का निद्रा में वध किया गया हो तो पेशाब की थैलियों (Urinary Bladders) से मौत के समय अनुमान लगाया जा सकता है। खाली पेशाब की थैलियों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि हत्या नींद के तुरन्त बाद हुई थी जबकि भरी हुई थैलियां यह संकेत देती हैं कि मृत्यु थोड़े समय पहले हुई थी क्योंकि निद्रावधि में थोड़ा-थोड़ा करके पेशाब एकत्रित होता रहता है। गाढ़ा और पीले पेशाब से भरी हुई थैलियां कम से कम 4 घंटे पूर्व मृत्यु का संकेत देती हैं।

आमाशीय घटक-उदरीय पदार्थ (Stomach Contents)**:—**यदि अंतिम अवस्था में खाए गए व्यंजनो की जानकारी हो तो अपाचक व अर्धपाचक भोजन से मृत्यु के समय का अनुमान लगाया जा सकता है परन्तु इसमें सावधानी से ही अनुमान लगाना ही तर्कसंगत होगा क्योंकि पाचनतंत्र की प्रक्रिया बीमारी, आहत होने से या शोकग्रस्त होने से भी अवरुद्ध हो जाती है।

कपड़े :—पहने गए कपड़ों की दशा से भी मौत के समय की जानकारी मिल सकती है, क्योंकि सूती कपड़े 2 वर्ष में, ऊनी कपड़े 4 वर्ष में और रेशमी कपड़े लगभग 6 वर्ष में क्षतिग्रस्त हो जाते हैं। फिर भी वातावरणीय और कपड़ों का निरंतर प्रयोग ही लेखा-जोखा निकालने में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसके अतिरिक्त चींटियां और कीट भी कपड़ों को तहस-नहस कर सकते हैं।

वनस्पतियाँ :—यदि मृतक एक गहन जंगल में पड़ा रहा हो और उसके अस्थिपिंजर पर वनस्पति उग चुकी हो तो वनस्पतियों से उसकी मृत्यु का अनुमान लगाया जा सकता है।

जंग (Rust) :—लोहे या स्टील की वस्तुएँ जैसी अंगूठी, चाबी, लोहे की पिन, छल्ले इत्यादि जो जंग पकड़ती हैं। जितनी वस्तुएं जितनी अधिक जंग से अवशोषित होंगी, उतनी ही पुरानी होंगी वस्तुतः मृत्यु के समय आंशिक रूप से पता चल सकता है।

षड्ऋतुओं वाले राष्ट्र भारतवर्ष में परिस्थितियाँ, भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न हैं अतैव गल-सड़न की प्रक्रिया का अनुमान लगाना नितान्त ही कठिन विषय है। फिर भी निम्नलिखित सूत्रों से इसकी पुष्टि हो सकती है।

(क) एक दिन के भीतर ही पेट फूलने लगता है और उसके ऊपर हरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं और दिन में पूर्ण विकसित हो जाते हैं। शरीर से भी दुर्गन्ध आने लगती है।

(ख) 2-3 दिन के पश्चात लाल रंग के फोड़े जिनमें द्रव्य होता है दृष्टिगोचर होने लगते हैं। कभी-कभार पेट भी फट जाता है, परन्तु ऐसी दशा बहुत ही कम देखने को मिलती है। इसके साथ ही शारीरिक खोल गैस से भर जाते हैं जिससे अत्यधिक दबाव बनता है और द्रव्य शारीरिक छिद्रों जैसे कि मुँह, गुदा, नाक, योनि और घावों से बहने लगता है।

(ग) वसा विखंडन प्रायः आंशिक रूप से होता है। इस प्रक्रिया में 3-6 माह लगते हैं और नैसर्गिक परिस्थितियों में 1 वर्ष का भी समय लग जाता है। विशेषकर वे शरीर जो पानी या दलदल में पड़े होते हैं। उनके शरीर में वसा विखंडित होने लगती है जिससे शरीर अत्यधिक नमी सोखने लगता है। शारीरिक बसा, वसीय एसिड में परिवर्तित होने से पानी, जो शरीर के उत्तकों की रक्षा करने में सक्षम हैं, विभाजित हो जाता है। मृत्यु पूर्व इस प्रक्रिया में मृत शरीर जिनमें शारीरिक द्रव्यों की कमी पायी जाती है वे शारीरिक द्रव्यों के अभाव से ग्रसित हो जाते हैं। अस्थियों में शनैः-शनैः परिवर्तन होने लगते हैं। सर्वप्रथम उनमें खाद्योज की कमी होने लगती है जिससे ये भंगुर हो जाती हैं और इनके

टूटने का खतरा मंडराया रहता है। अन्य परिवर्तनों में कोमल हड्डियों का पूर्णतया होना और सुदृढ़ हड्डियों का ढीला पड़ना है, परन्तु खोपड़ी व दांत बाद में क्षतिग्रस्त होते हैं।

तापमान, आद्रता, उपलब्ध ऑक्सीजन, स्वास्थ्य अवस्था, वातावरण जैसा कि बताया गया है—ये परिस्थितियाँ समय-समय पर विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग होती हैं। मृत्यु के सही समय के अनुमान की जानकारी ने निम्न स्तर का ही ज्ञान सुलभ होता है। मरने के समय की जानकारी न ही तो आपेक्षित हैं और न ही विश्वसनीय परन्तु फिर भी अग्रलिखित परिवर्तनों से मृत्यु के समय की जानकारी उपलब्ध हो सकती है।

रासायनिक परिवर्तन :—मृत शरीरों में बहुतायत रासायनिक परिवर्तन देखे गए हैं जैसे कि पोटाशियम में एस्कोरबिक एसिड व सस्क्सिनिडाइड्रोजिनास की मात्रा में परिवर्तन की जानकारी देखने को मिली है। परिणामों की एकरूपता का व्यापक स्तर पर न होने से मृत्यु के समय की जानकारी में व्यवधान पाया जाता है।

मृत्योपरांत समय का आभास होने की जानकारी अक्षरशः सत्य नहीं ठहराई जा सकती और न ही पूर्णरूपेण विश्वसनीय होती है। फिर भी अधिकांश घटनाओं में मृत्यु के अनुमान की पूर्ण जानकारी मिलती है।

कैलिफोराइडी (Calliphoridae) परिवार की, फ्लैश इटिंग फ्लाइज (मांस भक्षण करने वाली गहरे हरे नीले रंग की मक्खियां) मृतक के ऊपर मंडराती व भिनभिनाती हैं। ये मधुमक्खियां मृत शरीर के ऊपर अंडे देती है, ये अंडे समूह में दानेदार सफेद आटे जैसे दृष्टिगोचर होते हैं। ये अंडे लम्बाई में लगभग 1 मि.मी. और एक स्थान पर 120-150 अंडे पाए जाते हैं। अंडे प्रायः नासिका, कानों, आँखों, औठों और आँखों की पलको और विशेषकर घावों के ऊपर अत्यधिक देखने को मिलते हैं। मृत्यु के कुछ समय के पश्चात भी मक्खियों के अंडे देखने को मिल सकते हैं। ग्रीष्मऋतु में ये अंडे लगभग 1 दिन या 1 दिन से भी पहले लारवा में परिवर्तित हो जाते हैं, ये मैगटस के नाम से पुकारे जाने वाले जीव श्वेत रंग की छलनियों में बंटे हुए 1.5 मि.मी., 12 मि.मी. आकार के होते हैं और मृत शरीर के ऊपर रेंगने लग जाते हैं। ये घावों और शरीर के छिद्रों में विचरते दृष्टिगोचर होते हैं और एक प्रकार के घने शक्ति वर्धक प्रकिण्व छोड़ते हैं जो उत्तकों को छिन्न-भिन्न करने में सक्षम होते हैं।

शारीरिक वसा व प्रोटीन का क्षतिग्रसत होना प्रारम्भ हो जाता है। 1-2 सप्ताह में त्वचा बाल व नाखून ढीले पड़ जाते हैं। नरम उत्तक, यकृत, गुर्दे, दिमाग इत्यादि क्षतिग्रस्त होकर शरीर के बाहर पानी जैसे द्रव्य छोड़ते हैं। 4-8 दिनों में मृत शरीर में लारवा, प्यूपा में परिवर्तित हो जाता है और 6-12 दिन में पूर्ण मक्खी का रूप धारण कर लेता है।

3-6 दिनों में लारवा (मैगट्स) गहरे भूरे रंग के प्यूपा में परिवर्तित हो जाते हैं जो कि 6-7 मि.मी. लम्बे कोमा आकार में निष्क्रिय अवस्था में मिलते हैं जोकि अगले 3-6 दिनों में एक व्यस्क मक्खी का रूप धारण कर लेते हैं अतैव यह चक्र विभिन्न अवस्थाओं में और विभिन्न प्रकार के ऊष्ण कटिबन्धों में ग्रीष्म ऋतु में 7-12 दिन का ही पाया जाता है परन्तु शीतकाल में यह चक्र 18-22 दिन तक भी हो सकता है। इसी प्रकार जुएँ मानव शरीर में 3-6 दिन तक ही जीवित रहती हैं। अतैव मृतक के शरीर का विभिन्न ऋतुओं में सहजता से वांछित अनुमान लगाया जा सकता है।

मध्यम आकार की नंगे मृतक के शरीर की गुदा का तापमान लगभग 20 घंटों में वातावरण के अनुरूप ही दृष्टिगोचर होने लगता है। यदि मृतक को इधर-उधर से गर्मी अथवा ताप मिलता रहे तो गुदा के तापक्रम में वृद्धि हो जाती है। यदि मृतक 0 डिग्री सेल्सियस पर दिन या रात भर पड़ा रहे तो उसका शरीर अकड़ कर पत्थर जैसा सख्त हो जाता है। शव परिवर्तन के साथ-साथ

व्यापक रूप से तापक्रम में वृद्धि लगभग दो घंटे तक तभी देखने को मिलती है जब मृत्यु से पूर्व मृतक के शरीर का तापमान सामान्य से अधिक रहा हो मृत्यु पूर्व तापक्रम की संतुलित व्यवस्था विकृत हो गयी हो अथवा जब मांसपेशियों ने उल्टी-मितली आदि से निपटने के लिए अयधिक ऊष्मा को ज्वलंत किया हो या मृत्युपूर्व टीटेनस या स्ट्रिकनिन का विष उगला हो अथवा शरीर में जीवाणुओं की अत्यधि गहमा-गहमी से जैसे कि हैजा, संक्रमण इत्यादि से मृतक उत्पीड़ित रहा हो।

जब शरीर के तापक्रम और वातावरण के तापक्रम में अत्यधिक अन्तर होता है तो मृत्यु के पश्चात शरीर का तापक्रम तीव्रता से गिरता है। भारतवर्ष में वातावरण का तापक्रम ग्रीष्म ऋतु में शरीर से बहुत अधिक होने के कारण शरीर का तापक्रम शीघ्रता से नहीं गिरता। उष्णकटिबंधीय वातावरण में मृतक का तापमान 0.5^0 से 0.7^0 सेल्सियस ही नीचे आता है।

शरीर के तापक्रम का गिरना शरीर के भारी भरकम होने के प्रत्यक्ष रूप से संबंध बनाए हुए है। अतैव व्यस्क नवयुवकों की अपेक्षा वृद्धों और बच्चों का तापक्रम अधिक गिरता है। तापक्रम का गिरना शरीर की चर्बी से भी संबंधित है, जो लोग मोटे होते हैं उनका तापक्रम कम और दुबले-पतले लोगों का तापक्रम व्यापक रूप से शीघ्र कम होता है।

एक मृत व्यक्ति जब एक खुले हवादार रोशनदान वाले कमरे में हो तो उसका शरीर शीघ्र ठंडा पड़ जाता है, परन्तु बंद कमरे में पड़े हुए मृत व्यक्ति का तापक्रम अतिशीघ्रता से नीचे नहीं जाता जिस वायु में नमी पाई जाती है वह तापक्रम की सुचालक होती है परन्तु बिना नमी वाली वायु तापक्रम के लिए अपेक्षाकृत कम सुचालक होती है। अतैव नम वातावरण में मृत शरीर का तापक्रम अधिक गिरता है। यदि एक मृत शरीर जमीन के अन्दर दबा हुआ मिलता है तो वह अपेक्षाकृत खुले वातावरण में जल्दी ठंडा पड़ जाता है। पानी में मिलने वाले मृत शरीर की यदि खुले वातावरण में पड़े हुए मृतक से तुलना की जाए तो खुले में पड़ा शरीर शीघ्रता से ठंडा नहीं होता। परन्तु ठंडे पानी में मिलने वाला मृतक का तापक्रम लगभग खुले वातावरण में पड़े हुए मृत शरीर से गभग 2 गुणा अधिक ठंडा पड़ता है। जब मृतक का शरीर कपड़ों से अच्छी तरह ढका हुआ हो तो तापक्रम इतना नहीं गिरता जितना कि नंगे किए गए मृक का शरीर ठंडा पड़ता है।

'कैसपर डिकटम' के अनुसार एक मृतक, वायु में, पानी से दोगुणा और धरती में दबे हुए से आठ गुणा सड़ता है, हालांकि भिन्नताएं होने के साथ-साथ इनकी व्यावहारिक गणना कोई महत्वपूर्ण नहीं होती। फिर भी मृत शरीर ठंडे, नमकीन बहने वाले पानी की अपेक्षा गर्म पीने योग्य और अविचल पानी में शीघ्रता से गलता-सड़ता है। इसी प्रकार से शरीर की सड़न, ढके हुए कपड़े और गहरे स्वच्छ पानी की अपेक्षा गन्दे सीवरेज के नाले वाले पानी में शीघ्रता से होती है।

रेडियोधर्मी कार्बन से भी समय का अनुमान लगाया जा सकता है। परन्तु विधि विज्ञान प्रक्रिया में इसकी विशेष भूमिका नहीं होती क्योंकि 100 वर्ष तक ही रेडियो कार्बन तिथियाँ आंकी जा सकती हैं।

मृत्यु के पश्चात शरीर के अधिकांश द्रव्यों में विशेष रूप से रक्त में ग्लूकोज होता है। लेखक ने ग्लूकोज़ में आयी कमी को मृत चूहों में भी व्यक्त किया है। इसी प्रकार ग्लूकोज की कमी मृतक के शरीर में आंकी गयी है। इसका मुख्य कारण यह है कि निश्चय ही जीवाणु ग्लूकोज का भक्षण करते हैं और ज्यों-त्यों समय बीतता है इसकी मात्रा घटती जाती है। सामान्यतया एक स्वस्थ शरीर में प्रत्येक 10 मिलीलीटर खून में 100 मिलीग्राम ग्लूकोज की मात्रा होती है। एक सामान्य व्यक्ति में सामान्यत: 5000-6000 मिलीलीटर रक्त होता है। प्रयोगों से यह आकलन किया गया है कि मृतक के शरीर से प्रतिघंटा 13 मिलीग्राम ग्लूकोज़ का ह्रास होता है अर्थात

सामान्यतया 6-8 घंटे में मृतक में ग्लूकोज़ लगभग ह्रास हो जाता है अर्थात ग्लूकोज़ के स्तर की जानकारी से भी मृत्यु के सही समय की जानकारी मिलती है। मृतक की आँख की पुतलियों के द्रव्य में पोटाशियम की मात्रा में आकस्मिक वृद्धि से कोशिकाओं के व्यापक स्तर से तहस-नहस होने का अनुमान लगाया जा सकता है। मृत्यु के सही समय के आकलन में पौटाशियम स्तर की जाँच भी एक कारगर तकनीक है। मृत्युपरांत मृतक में प्रोटीन के ह्रास से रक्त में पेशाब के स्तर में अनावश्यक रूप से वृद्धि होती है। यूरिया प्रोटीन का ही एक व्यर्थ विखंडित उत्पाद होता है। अधिकांश प्रयोगों में यह अक्षरश प्रमाणित हो चुका है कि मृत्यु के पश्चात रक्त में यूरिया की मात्रा शनै-शनै घटने लगती है।

मृत शरीर का रक्षाकरण अर्थात मम्मीफिकेशन :- —यूनान में मृत शरीर को मम्मी कहा जाता है। यह प्रक्रिया गर्म और शुष्क क्षेत्रों में देखी गयी है। शरीर में सूखापन शुष्क गर्म वायु द्वारा उत्प्रेरित वाष्पीकरण से होता है। पूर्णरूप से शरीर के शुष्क होने में लगभग एक सप्ताह का समय लगता है। ऐसी परिस्थितियां ऐसे शवों में मिलती हैं जो गहरी कब्र में दबे हुए मिलते हैं अथवा बिना ताबूत के थार मरुस्थल अथवा कलाहरी मरुस्थल की रेत में दबाए गए हों। तीव्र गर्मी और शुष्क वायु के कारण इनका वाष्पीकरण भी तीव्रता से होता है। इन परिस्थितियों में शरीर के कोमल भाग सिकुड़ जाते हैं परन्तु संरचना पूर्ववत की तरह ही दिखाई देती है। शरीर की त्वचा सूख कर चमड़े में परिवर्तित हो जाती है। त्वचा का भूरा होने के साथ-साथ शरीर की हड्डियों से चिपकने लगती हैं। शव की गन्ध सड़े हुए पनीर जैसी होती है। विभिन्न क्षेत्रों में मृत्यु उपरान्त 3 माह से 2 वर्ष तक की जानकारी विभिन्न अवस्थाओं को देखकर मिलती है।

प्रारम्भ में ये धब्बे तांबे जैसे लाल रंग के बैंगनी रंग में शरीर की सतहों पर कहीं-कहीं अपनी छटा बिखेर रहे होते हैं और बड़े होकर ये एक स्थायी रंग में परिवर्तित हो जाते हैं। बाद की अवस्था में इनके रंग और आकार में परिवर्तन देखने को नहीं मिलता। ऐसी अवस्था में शरीर का पोज बदलने पर भी खून का बहाव संभव नहीं हो पाता जिससे मृत्यु के समय का आकलन 6-12 घंटे के अन्दर तक हो सकता है।

मनुष्य के मस्तिष्क पर आई चोटों की अपेक्षा दुर्घटनाग्रस्त होने पर शरीर पर आए घाव मनुष्य को इतनी हानि नहीं पहुंचाते। मस्तिष्क में कुछ ऐसे क्षेत्र भी हैं जिन पर चोट लगने से मनुष्य अविलम्ब मृत्यु को प्राप्त होता है। अतैव इन्हें मर्म स्थान की संक्षा दी गयी है। निःसंदेह शिखा चोटी के अधोभाग में भी एक मर्मस्थान होता है उसे अधिपतिमर्म भी कहा जा सकता है। इस स्थान पर चोट लगने से व्यक्ति की तत्काल मृत्यु हो जाती है। हिन्दू धर्म संस्कृति के अनुसार महालक्ष्मी मातुर्लिंग और बिजौरे का फल धारण करती है। इसी प्रकार मनुष्य में सुषुम्ना के मूल स्थान को मस्तुलिंग कहते हैं। मस्तिष्क के साथ ज्ञानेन्द्रियां—आँख, कान, नाक, जीभ इत्यादि का घनिष्ठ सम्बन्ध है और कर्मेन्द्रियों हाथ, पैर, गुदा, जननेन्द्रिय आदि का सम्बन्ध भी मस्तुलिंग से है।

बाल कुचालक (Bad Conductor of Heat) है, अतैव चोटी के लम्बे बाल बाह्य उष्ण तापमान और मस्तुलिंग की शीतलता प्रदान करके रक्षा करते हैं। यदि विशेषज्ञ मस्तुलिंग अधिपतिमर्म—सुषुम्ना Medulla Oblongata का भेद जानता हो तो मृत्यु के आकलन में देरी ही नहीं लगती क्योंकि मस्तिष्क के लिए ठंड अनिवार्य है परन्तु मस्तुलिंग उष्मा, मस्तिष्क को ठंडा व संवेदनशील रखने के लिए यह कर्म करवाना नितांत आवश्यक है और मस्तुलिंग की उष्मा को स्थिर रखने के लिए गोरवुर के परिभाग के बाल धारण करना अत्यावश्यक है।

इस स्थान पर चोट लगने से मनुष्य तत्काल मृत्यु को प्राप्त होता है। अतैव सुषुम्ना की रक्षा के लिए चालक हैलमेट को प्रयोग में लाते हैं।

❑

नारकोएनालिसिस टेस्ट असंवैधानिक

अरुण कुमार पाठक

श्री सी.पी. मनियार

113/4, शिवकुटी (अपहान टी.वी. फैक्ट्री के पीछे,)

हलाहाबाद (उ.प्र.) पिन-211004

भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने 5 मई 2010 को ऐतिहासिक फैसला सुनाते हुए नारको एनालिसिस करार देते हुए इन पर पूर्ण प्रतिबंध लगाने की घोषणा की है। इन परीक्षणों के विरुद्ध रोक लगाने के लिए मा. उच्चतम न्यायालय में गुजरात की कुख्यात महिला अंडरवर्ल्ड सरगना संतोख बेन जडेजा, मुम्बई के माफिया डॉन अरुण बबली, तमिल फिल्म निर्माता के. वेंकटेश्वर राव, जाली स्टांप पेपर घोटाले के अभियुक्त दिलीप कामथ तथा महाराष्ट्र के निर्दलीय विधायक अनिल गोटे ने वर्ष 2006 में याचिका दायर की थी जिस पर मा. उच्चतम न्यायालय ने सुनवायी पूर्ण करके 25 जनवरी 2008 को अपना फैसला सुरक्षित कर लिया था और दो वर्ष के गहन मंथन के बाद मा. उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति के.जी. बालाकृष्णन की अध्यक्षता वाली तीन जजों (न्यायमूर्ति आर.वी. रविन्द्रन तथा न्यायमूर्ति जे. एम. पंचाल) की पीठ ने इस याचिका के पक्ष में फैसला सुनाते हुए नारको टेस्ट व अन्य उसके सह वैज्ञानिक परीक्षणों को अवैध घोषित कर दिया।

मा. उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायधीश की अध्यक्षता वाली तीन सदस्यीय पीठ ने जिन कारणों के आधार पर नारको टेस्ट, ब्रेन मौपिंग व पॉलीग्राफी टेस्ट को गलत ठहराया है, वे निम्न हैं—

1. ट्रूथ सीरम (सोडियम पेंटोथाल) देने के बाद व्यक्ति सम्मोहन में आ जाता है। ऐसी स्थिति में उसके द्वारा कहीं बातें स्वैच्छिक नहीं होती, इसलिए इन बातें का कानून में कोई अर्थ नहीं है।

2. आरोपित या संदिग्ध की मर्जी के बगैर होने वाली यह जांच संविधान के अनुच्छेद 20(3) और अनुच्छेद 21 का हनन करती है जो स्वदोषारोपण से बचाव और चुप रहने का अधिकार देता है।

3. चूंकि भारत में ज्यूरी प्रणाली नहीं है इसलिए ऐसे टेस्ट के परिणाम ट्रायल जज को प्रभावित कर सकते हैं। पुलिस टेस्ट के वीडियो लीक कर देती है और मीडिया इनका प्रसारण करती है जिससे अनावश्यक जन दबाव बनता है।

पुलिस अन्य जांच एजेसियां तथा केन्द्र सरकार इन परीक्षणों को जारी रखने के पक्ष में थीं लेकिन मा. सर्वोच्च न्यायालय ने बिन दबाव में आए इन परीक्षणों को अवैध घोषित करते हुए भारत में मानवाधिकार के अन्तर्राष्ट्रीय मानकों को बरकरार रखा है। निर्णय सुनाते हुए जस्टिस के.पी. वाला कृष्णन ने कहा कि “हमारा यह मानना है कि किसी भी व्यक्ति को उसकी मर्जी के खिलाफ इस बात के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता कि उस पर इन तकनीकों का इस्तेमाल किया जाए तथा ऐसा किया जाना व्यक्तिगत स्वतंत्रता में अनुचित दखलंदाजी होगी।”

इन परीक्षणों को अभी तक पूछताह के एक वैज्ञानिक उपकरण के रूप में मानकर प्रचलन में लाया जा रहा था। ये परीक्षण किस प्रकार किए जाते हैं, उनका इतिहास व उपयोगिता क्या है इसे समझने के लिए इनको विस्तृत रूप से समझना जरूरी है।

1. नारको एनालिसिस टेस्ट—ट्रुथ टेस्ट के रूप में प्रचलित यह नारको एनालिसिस शब्द 1930 में प्रचलन में आया। इस टेस्ट के लिए सोडियम थियोपेटल (जिसे आमतौर पर सोडियम पेंटोथाल भी कहा जाता है) नामक दवा का प्रयोग किया जाता है। कानून के अनुसार दवा देते समय वहां पर एक क्लीनिकल साइकोलॉजिस्ट और

एनेस्थेटिस्ट का उपस्थित होना जरूरी होता है। एनेस्थेटिस्ट ही पूछताछ के लिए तय समय सीमा को ध्यान में रखते हुए व्यक्ति को दिए जाने वाले द्रुय सीरम की मात्रा तय करता है। शरीर में यह दवा प्रवेश करने के बाद व्यक्ति लगभग सोने की स्थिति में आ जाता है। इसके बाद उस व्यक्ति से उस घटना से संबंधित सवाल पूछे जाते हैं जिसमें उसके शामिल होने या जानकारी रखने की संभावना होती है या उस घटना से संबंधित चित्र दिखाए जाते हैं। ऐसी स्थिति में वह पुलिस से कुछ भी छुपा नहीं पाता है और सब कुछ सही-सही बता देता है। चूंकि न्यायालय इस टेस्ट के परिणामों को बहुत महत्व नहीं देती है, अतः किसी अपराधी के नारको एनालिसिस रिजल्ट को कोर्ट में प्रमाण के रूप में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है।

नारको एनालिसिस टेस्ट में प्रयोग की जाने वाली अन्य दवाइयां सोडियम एमिटाल व स्कोपोलामाइन हैं। ये ड्रग्स जीवन को जोखिम में डालने वाले कई दुष्प्रभावों को भी जन्म देते हैं। इससे अवसाद का बढ़ना, श्वसन क्रिया पर असर तथा केंद्रीय तंत्रिका तंत्र भी प्रभावित होता है। सिरदर्द, याददाश्त का मंद पड़ जाना, उद्दीपन और लम्बी निद्रा आदि जैसी समस्याएं भी हो सकती हैं।

2. लाई डिटेक्टर टेस्ट (पॉलीग्राफ टेस्ट) पॉलीग्राफ तकनीक के प्रयोग से यह पता लगाया जाता है कि आरोपी पूछे गये सवालों के उत्तर में सच बोल रहा है या झूठ। इस टेस्ट में आरोपी व्यक्ति के रक्तचाप, हृदयगति, श्वासगति, पसीने की स्थिति तथा उंगलियों में पसीने की स्थिति को बारीकी से जांचा व परखा जाता है।

पॉलीग्राफ टेस्ट लेने के पूर्व विशेषज्ञ आरोपी व्यक्ति ये संबंधित एक प्रश्नावली तैयार करके रखते हैं जिनका उत्तर उन्हें पता होता है। आरोपी व्यक्ति से इन्हीं प्रश्नों को पूछकर उसका सही और गलत जबाव मिलने पर पॉलीग्राफ मशीन में होने वाली प्रतिक्रिया को विशेषज्ञ जांचते हैं और प्रतिक्रिया को नोट कर लेते हैं। 3-4 दिन तक चलने वाले इस टेस्ट के परिणामों के आधार पर विशेषज्ञ संख्यात्मक रिपोर्ट तैयार करते हैं।

पॉलीग्राफ या लाई डिटेक्टर तीन इलेक्ट्रो मैकेनिकल उपकरणों (न्यूयोग्राफ, कार्डियोसायमोग्राफ तथा साइकोगैल्वेनो-ग्राफ) से युक्त एक ब्रीफकेसनुमा मशीन होती है। इसमें न्यूमोग्राफ आरोपी व्यक्ति की श्वासगति में आए बदलावों को रिकार्ड करता है। इसमें आंशिक रूप से फूली हुयी रबड़ की एक ट्यूब लचीले तार से लिपटी रहती है, जिसे एक चेन की भांति आरोपी के पेट या सीने पर बांधा जाता है। इस न्यूमोग्राफ में लगे एक रिकार्डिंग पेन से सांस में होने वाले उतार चढ़ाव के दबाव को ग्राफ पर रिकार्ड किया जाता है।

कार्डियो सायमोग्राफ रबड़ की एक पट्टी होती है जिसे रबड़ ट्यूब के माध्यम से आरोपी के पैर या बांह के निचले हिस्से पर बांधा जाता है। यह ट्यूब पालीग्राफ से जुड़ी रहती है और टेस्ट के दौरान रक्तदाब व नब्ज की गति को रिकार्ड करती है।

साइको गैल्वेनोग्राफ में लगे इलेक्ट्रोड को हाथ की हथेलियों एवं पैरों के तलवों में लगाकर त्वचा की प्रतिरोधक क्षमता में आए बदलावों को रिकार्ड किया जाता है जो कि डर, बेचैनी या तनाव के कारण पसीने की ग्रंथि से पैदा होती हैं।

इन तीनों उपकरणों से प्राप्त विश्लेषणों का अध्ययन करके विशेषज्ञ आरोपी के सच-झूठ का पता कर लेते हैं।

3. ब्रेन मैपिंग—इसे ब्रेन फिंगर प्रिंटिंग भी कहते हैं। इस तकनीक का आविष्कार अमेरिकी वैज्ञानिक डॉ. लारेंस फारवैल ने किया था। यह तकनीक वर्तमान समय में मानव-मस्तिष्क में अंकित हो जाती है। ऐसे ही अपराधी के मस्तिष्क में अपराध की छवि अंकित हो जाती है, किंतु यह वह पूछताछ में अपराध स्वीकार न भी करे, तो भी अपराध संबंधी दृश्य पुनः आंखों के सामने आने पर उसके मन में विशेष विद्युतीय तरंगे उठने लगती हैं। पी-300 नामक इन तरंगों को ई ई जी द्वारा रिकार्ड कर

लिया जाता है। तथा आरोपी के दिमाग को पढ़कर सत्य-असत्य की जांच की जाती है। इस तकनीक में आडियोविजुअल, कम्प्यूटर तथा ई ई जी आदि उपकरणों का प्रयोग किया जाता है।

भारत में ब्रेन मैपिंग की शुरुवात अहमदाबाद स्थित फारेंसिक साईंस लेबोरेटरी से हुयी थी। इसके पश्चात बंगलौर स्थित फारेंसिक साईंस लेबोरेटरी में इस तकनीक की शुरुवात हुई। अब तक बंगलौर की लैब में ब्रेन मैपिंग के करीब 700 तथा नारको एनालिसिस के 300 मामलों का परीक्षण हो चुका है।

आज के समय में ब्रेन फिंगर प्रिंटिंग को फारेंसिक साक्ष्यों के लिहाज से बहुत कम समर्थन हासिल है। इसे लाई डिटेक्टर से बेहतर तकनीक नहीं माना जाता है। यदि नारको एनालिसिस आदिम तकनीक है तो ब्रेन मैपिंग को अपरिपक्व तकनीक ही कहा जा सकता है।

फारेंसिक साईंस लेबोरेटरी बैंगलूर के निदेशक डॉ. बी.एम. मोहन का कहना है कि नारको एनालिसिस एक गैर-हानिकारक तरीका है, सच तक पहुँचने का यह आरोपी का एक किस्म का ड्रग आधारित इन्टरव्यू है।

मानवाधिकार संगठन, मानवाधिकार कार्यकर्ता और वर्ल्ड मेडिकल एसोसिएशन आपराधिक जांच के इन परीक्षणों का विरोध करते हैं। वर्ल्ड मेडिकल एसोसिएशन ने अपने टोकियो घोषणा पत्र में संशोधन करते हुए उसमें निम्न दो नए बिन्दुओं को समावेशित किया है—

(i) कोई भी चिकित्सक किसी भी परिस्थिति के चलते उत्पीड़न अथवा किसी अन्य बर्बर व अमानवीय तरीकों में किसी भी रूप में भागीदार नहीं होगा, चाहे पीड़ित व्यक्ति किसी अपराध का संदिग्ध, आरोपी और दोषी ही क्यों न हो और किसी हथियारबंद मुहिम और नागरिक संघर्ष के उद्देश्य से प्रेरित क्यों न हो।

(ii) यातना के किसी भी बर्बर और अमानवीय तरीकों तथा इस प्रकार की यातनाओं को सहने की प्रतिरोधक क्षमता को कम करने की कार्यवाही के लिए कोई चिकित्सक परिसर उपकरण, सामग्री अथवा जानकारियां मुहैया कराने में मदद नहीं करेगा।

स्पष्ट है कि इन मनोवैज्ञानिक परीक्षणों को न तो समाज, न ही वैज्ञानिक और न ही न्यायालय स्वीकृति दे रहा है। इन परीक्षणों को अमानवीय, नैतिकता के विरुद्ध, बर्बर, हिंसक और यातनास्वरूप बताया जा रहा है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार आपराधिक घटनाओं से पर्दाफाश करने के लिए कराया जाने वाला नारको टेस्ट यातना के अलावा कुछ नहीं है। यह एक तरह से नाटक है। यह न तो वैज्ञानिक है और न ही कानूनी।" उन्होंने यह भी कहा कि इन परीक्षणें का प्रमाणीकरण करने के लिए देश में कोई संस्था ही नहीं है।

वर्ष 2003 में अमेरिका की नेशनल एकेडमी ऑफ सांइस (N.A.S.) ने "द पॉलीग्राफ एंड लाई डिटेक्शन" नाम से एक रिपोर्ट प्रकाशित की थी जिसमें यह निष्कर्ष निकाला गया था कि पॉलीग्राफ के संबंध में निकाले गए अधिकतर परिणाम अविश्वसनीय व अवैज्ञानिक हैं।

माननीय उच्चतम न्यायाल ने अपने निर्णय में अपराध की तहकीकात के इन परीक्षणों की प्रक्रिया को संविधान के अनुच्छेद 20(3) और अनुच्छेद 21 के तहत व्यक्ति को यातना देकर अपने ही खिलाफ सबूत देने के लिए बाध्य न करने के हक और तकनीक के माध्यम से उसके चुप रहने की निजी स्वतंत्रता में हस्तक्षेप माना है तथा इन परीक्षणों को अवैधानिक करार देकर व्यक्ति की आजादी और अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार का झंडा बुलंद किया है। माननीय उच्चतम न्यायालय ने अपने इस नवीनतम निर्णय से अपने पूर्व में दिए गए इस अभिमत का खण्डन कर दिया है जिसमें कहा गया था कि "ये टेस्ट अन्वेषण के लिए औजार (tool) स्वरूप हैं और ये गंभीर अपराधों आतंकवाद, हत्या, बलात्कार और डकैती आदि मामलों को हल करने में मदद मिलती है। इनकी मदद से अपराधों की तह तक पहुचने में सहायता मिलती है तथा भले ही मुख्य साक्ष्य न हों परंतु इनको सहायक साक्ष्य के

रूप में स्वीकार किया जा सकता है।"

मा. उच्चतम न्यायालय ने पूर्व में यह अभिमत भी प्रकट किया था कि "यदि इन वैज्ञानिक तरीकों के प्रयोग की अनुमति न दी जाय तो इससे थर्ड डिग्री मेथड के प्रयोग को बढ़ावा मिलेगा। अतः इन उपकरणों का प्रयोग विधि सम्मत ढंग से किया जा सकता है क्योंकि ये वैज्ञानिक अन्वेषण का ही एक भाग है।" लेकिन 05 मई 2010 के मा. उच्चतम न्यायालय के निर्णय ने स्पष्ट निर्णय दिया है कि ये टेस्ट केवल अब आरोपी की रजामंदी से ही हो सकते हैं। अब कोई भी न्यायालय पुलिस की रिपोर्ट पर ऐसे टेस्ट की इजाजत नहीं दे सकता।

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 20 (3) :आत्म अभिशासन

अनुच्छेद 20 का खण्ड 20(3) यह उपबंधित करता है कि किसी भी व्यक्ति को, जिस पर कोई अपराध लगाया गया है, स्वयं अपने विरुद्ध साक्ष्य देने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा।

अनु. 20(3) का संरक्षण किसी व्यक्ति को तभी मिलेगा, जब निम्नलिखित शर्तें पूरी हों—

(1) व्यक्ति पर अपराध करने का आरोप लगाया गया हो अर्थात् व्यक्ति को अपराध में अभियुक्त होना चाहिए।

(2) उसे अपने विरुद्ध साक्ष्य देना हो।

(3) उसे अपने ही विरुद्ध साक्ष्य देने के लिए बाध्य किया जाय अर्थात् व्यक्ति को दबाव देकर साक्ष्य नहीं दिलाया जाएगा किंतु यदि व्यक्ति (अभियुक्त) स्वेच्छा से साक्ष्य देता है, तो वर्जित नहीं है। "दबाव" देने के अन्तर्गत अभियुक्त को "शारीरिक" और "मानसिक मंत्रणा" देना शामिल है।

इस अनुच्छेद में वर्णित तथ्यों से यह स्पष्ट है कि ये तकनीकें व्यक्ति के संवैधानिक अधिकार का हनन करती हैं।

नारको एनालिसिस तकनीक का प्रयोग भारत में 1995 से शुरू हुआ। अब तक इस टेस्ट का प्रयोग भारत के महत्वपूर्ण आपराधिक मामलों स्टाम्प पेपर घोटाला (अब्दुल करीम तेलगी के परीक्षण में वर्ष 2003 में), निठारी कांड (मोन्हिदर सिंह पंढेर के परीक्षण में वर्ष 2006 में), आरुषि हत्याकांड (अभियुक्तों, डॉ. नुपूर तलवार, डॉ. राजेश तलवार के परीक्षण में वर्ष 2008 में), मालेगांव ब्लास्ट (साध्वी प्रज्ञा सिंह ठाकुर परीक्षण में, वर्ष 2008 में), अबु सलेम के परीक्षण में, मुंबई ट्रेन ब्लास्ट (कमाल अहमद, वकील अंसारी और तनवीर अंसारी के परीक्षण में, वर्ष 2006 में), गोधारा दंगा (07 अभियुक्तों के परीक्षण में, वर्ष 2002 में), रुचिका गिरहोत्रा यौन शोषण कांड (पुलिस महानिदेशक एस.पी. एस. राठौर के परीक्षण में) किया जा चुका है।

अब जबकि न्यायालयों को इन परीक्षणों को अनुमति देने पर मा. उच्चतम न्यायालय ने रोक लगा दी है, पुलिस तथा अन्य जांच एजेंसियों को अन्वेषण के लिए, सत्य की खोज के लिए और अधिक मशक्कत करनी पड़ेगी तथा अन्य वैज्ञानिक विधियों का सहारा लेना पड़ेगा।

दुनिया के सभी विकसित देशों ने अपने यहां नारकोएनालिसिस, ब्रेन मैपिंग तथा पॉलीग्राफ टेस्ट पर रोक लगा रखा है। भारत ने भी देर से ही इन तकनीकों के मानव के ऊपर प्रयोग पर रोक लगाकर मानवाधिकारों की गरिमा का पुनः आदर किया है। न्यायालय ने अपने इस नवीनतम निर्णय से नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा करते हुए व्यक्ति की आजादी और मानवाधिकार संरक्षण का झण्डा बुलंद करते हुए न्याय का सिर ऊंचा उठा दिया है और न्यायालय को गौरवान्वित किया है। ❑

भारत में मानव व्यापार के अपराध और अपराध और पुलिस की भूमिका

उमेश कुमार सिंह

(मा.सु.से.) (से.नि. प्र. महानिरीक्षक)

दिनकर पथ, हसनपुरा रोड,

न्यूमहावीर कालोनी, वेडर, पटना-2

आधुनिक युग में मानव व्यापार के अपराध की घटनाएँ इस प्रकार सर्वव्याप्त होती जा रही है कि संवदेनशीता के साथ यदि पुलिस इनकी रोकथाम नहीं कर पाई, तो ये सामाजिक व्यवस्था को ही भविष्य में अस्त-व्यस्त एवं ध्वस्त कर देगी। अतः यह आवश्यक है कि मानव व्यापार से संबंधित अपराधों एवं उनकी रोकथाम हेतु संभाव्य उपायों तथा इससे संबंधित अपराध कारित होने पर उसके अनुसंधान की बरीकियों को पुलिस सही ढंग से समझे तथा आवश्यकतानुसार उसे कार्य रूप मे लाये। अधिकांश पदाधिकारी मानव व्यापार के अपराध और उसके महत्व को समझ ही नहीं पाते हैं और जो समझते भी हैं, वे इसे काफी सतही ढंग से लेते हैं। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि इतने बड़े अपराधों की रोकथाम के लिए भारतीय पुलिस न तो उतनी चिंतित ही है और न ही अभी तक इन अपराधों को अन्य अपराधों की तुलना में सर्वोच्च प्राथमिकता की सची में ही इसे रख पाती है। समाज पर पड़ने वाले विध्वंसक परिणाम को दृष्टि में रखते हुए आज बहुत ही आवश्यक हो गया है कि पुलिस को तथा केन्द्र और राज्य सरकारों को इतने बड़े अपराध के प्रति हम जागरूक बनायें और उन्हें संवेदनशील और जागरूक बनाने के लिए कदम उठायें। इसके गंभीर संवेदनशील पक्ष को समझना पुलिस पदाधिकारियों एवं आम लोगों के लिए अति आवश्यक है, ताकि वे इसके निरोध एवं रोकथाम के उपायों को प्रभावशाली ढंग से लागू कर सकें।

मानव व्यापार के अपराध का अर्थः—

ह्यूमन ट्रैफिकिंग का अर्थ लोग वेश्यावृति आम तौर पर समझ लेते हैं। किंतु यह समझना एक भारी भूल है। ये एक दूसरे के पर्यायवाची भी नहीं हैं। अतः इसे समझने के लिए यह आवश्यक है कि इसे वेश्यावृति से अलग करके देखा जाय।

मानव देह व्यापार से संबंधित कानून इम्मोरल ट्रैफिकिंग प्रिमेंसन एक्ट—1956 के मुताबिक वेश्यावृति तब अपराध बन जाता है, जब आर्थिक शोषण या लाभ के लिए इसे किया जाता हो। जब किसी स्त्री या लड़की का यौन शोषण आर्थिक लाभ के लिए होता हो, तो इसे यौन-शोषण का व्यापार यानी सी.एस.ई.—कॉर्मशियल सेक्सुअल एक्सपोलाइटेशन कहा जाता है, जो कानून के अनुसार दण्डनीय अपराध है तथा शोषण में शामिल एक अथवा सभी व्यक्तियों के खिलाफ अपराध बनाता है। अतः ह्यूमन ट्रैफिकिंग, कानूनन वह प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से किसी व्यक्ति को सी.एस.ई. के लिए जबरन या उसकी मर्जी से भी उसे नियुक्त करना तथा फ्रेंड्स क्लब या दोस्त बनाओं क्लब के माध्यम से लड़कियों अथवा महिलाओं अथवा महिलाओं का आर्थिक लाभ के लिए उपयोग करना, लड़के-लड़कियों का शोषणमूलक श्रम में व्यवहार करना, बच्चों को अपहृत कर उसे शारीरिक रूप से अक्षम बनाकर बड़े शहरों में भीख मांगने/लगाने, गरीबी का लाभ उठाकर छोटी लड़कियों को दुबई अथवा मिडलिस्ट के धनी शेखों के हाथ में पैसे के लिए बेच देना, अथवा शादी करना इत्यादि, जघन्य अपराध इसमें सम्मिलित है। ह्यूमेन ट्रैफिकिंग एक बहुत बड़े अपराधों का समूह है। जिसमें एक ही साथ अनेक जघन्य अपराध सम्मिलित है तथा एक अथवा एक से

अधिक व्यक्तियों का समूह इस अपराध में निरन्तरता से इसमें सम्मिलित होते हैं।

अवैध व्यापार की परिभाषा आई.टी.पी.ए. की अनेक धाराओं में पाया जाता है। धारा—5 में वेश्यावृति हेतु मनुष्य को खरीदने अथवा उसे ले जाने का उल्लेख है। इस सेक्शन के अनुसार किसी व्यक्ति को खरीदने का प्रयास या उसे ले जाने का प्रयास अथवा किसी व्यक्ति को वेश्यावृति के लिए प्रेरित करना भी अवैध मानव व्यापार के अंतर्गत आता है। इस प्रकार इसका विस्तृत क्षेत्र होता है।

अवैध व्यापार की विस्तृत परिभाषा गोवा बाल अधिनियम-2003 में भी उपलब्ध है। यद्यपि यह बच्चों के अवैध व्यापार पर केंद्रित हैं, किंतु इसकी परिभाषा व्यापक है। धारा-2 (जेड) के अंतर्गत चाइल्ड अवैध व्यापार का अर्थ है वैधानिक या अवैधानिक तरीकों से देश की सीमा के अंदर या सीमा-पार धमकी, बल प्रयोग अथवा किसी बाध्यकारी उपायों द्वारा अगवा करके, झांसा देकर, धोखा देकर शक्ति अथवा प्रभावशाली पद का दुरुपयोग कर, अथवा धन की लेन-देन या लाभ द्वारा व्यक्ति के अभिभावक की स्वीकृति प्राप्त कर किसी आर्थिक लाभ अथवा किसी अन्य उद्देश्य से व्यक्ति की खरीद-फरोख्त, उसकी नियुक्ति उसका परिवहन करना, हस्तांतरण करना, उसे अपने अधीन रखना या हासिल करना।

मानव व्यापार के अपराधों के मौलिक तत्व :—

पुलिस को सर्वप्रथम यह जानना होगा कि इस संगठित अपराध के कौन-कौन से मौलिक तत्व है। इसके निम्नलिखित आवश्यक तत्त्व हो सकते हैं, जिन्हें जानने के बाद पुलिस पदाधिकारियों को ऐसे अपराधों से निबटने में आसानी होगी :—

1. ट्रैफिकिंग एक संगठित अपराध—इस अपराध में एवडक्शन, अपहरण, गैर-कानूनी ढंग से रोक कर रखना, गैर कानूनी ढंग से अवरुद्ध करना, आपराधिक ढंग से डराना, चोट पहुंचाना, घोर चोट पहुंचाना, यौन हमला, लज्जा भंग करना बलात्कार करना, प्रकृति विरुद्ध अपराध, मनुष्यों की खरीद बिक्री, दास/दासी बनाकर रखना, अपराधिक षड्यंत्र, दुष्प्रेरित करना (अबेटमेंट) इत्यादि प्रमुखता से शामिल रहते हैं। अतः इस अपराध में कई स्थान या घटनास्थल विभिन्न समय पर कारित किये गये अपराध में शामिल हो सकते हैं। मानव अधिकारों का खुले आम उल्लंघन, प्राईवेसी भंग करना, न्याय से वंचित करना, न्यायालय तक पहुंचने से रोक रखना, मौलिक अधिकारों एवं प्रतिष्ठा का हनन जैसे कारक तत्व इन अपराधों में सम्मिलित होते हैं, इन्हें प्रमुखता से बारीकियों के साथ पुलिस पदाधिकारियों को समझना होगा।

2. ट्रैफिकिंग का शिकार पीड़ित व्यक्ति— आई.टी.पी.ए. की धारा-5 के अनुसार किसी भी उम्र का ऐसा पुरुष या स्त्री इस अपराध के शिकार हो सकते हैं, जिसे सी.एस.ई. के लिए वेश्यालय अथवा इसी ऐसे स्थान पर लाया गया हो, जहां सी.एस.ई. होता हो। यह उल्लेखनीय है आई.टी.पी.ए. के अंतर्गत किसी भी व्यक्ति को ट्रैफिकिंग करने का प्रयत्न भी दंडनीय अपराध बनाता है। अतः भौतिक रूप से किसी व्यक्ति का ट्रैफिकिंग होने के पहले ही यह कानून अपराध निर्मित कर देता है, इसकी जानकारी हर पुलिस पदाधिकारी को अनिवार्य रूप से होना चाहिए।

3. बालक/बालिकाएं—जुभेनाईल जस्टिस केयर एण्ड प्रोटेक्शन ऑफ चिल्ड्रेन एक्ट-2000 के अंतर्गत कोई भी बाल जिसकी उम्र 18 वर्ष से कम हो और जिसे देखभाल या संरक्षक की जरूरत है, वह बाल कहलाता है। कानून के जानकर पुलिस पदाधिकारी का यह कर्तव्य है ऐसे बालक/बालिकाओं को सूचना मिलने पर वे अजाद करायें तथा संबंधित न्यायालय के माध्यम से बाल कल्याण समिति के सामने पेश करें और उनकी पूरी देख-भाल करना सुनिश्चित करें।

4. ट्रैफिकिंग का शिकार बालिग व्यक्ति—बालिग

व्यक्ति के यह कहने पर कि उनकी सहमति से उनकी ट्रैफिकिंग हुई है अथवा उनका सी.एस.ई. किया जा रहा है, इससे भी ट्रैफिकिंग का अपराध खत्म नहीं हो जाता है। ऐसी सहमति में संभावना रहती है कि उसे विवश कर अथवा बल प्रयोग कर, डरा-धमका कर या किसी अन्य दवाब के तहत प्राप्त की गई हो। ऐसी सहमति का कोई अर्थ नहीं होता है तथा ऐसे तमाम मामले ट्रैफिकिंग के अपराध के दायरे में आता है। साथ ही पुलिस पदाधिकारी को यह दिमाग में स्पष्ट होना चाहिए की सी.एस.ई. के इरादे से ट्रैफिक की कई स्त्री इस अपराध का खुद एक शिकार है न कि अभियुक्त। इसके साथ उनका व्यवहार पीड़िता के रूप में होना चाहिए और काफी सहिष्णु और शालीनता से पेश आना चाहिए।

5. ट्रैफिक किये गये व्यक्ति का शोषण—शोषण की प्रक्रिया प्रत्यक्ष भी हो सकती है और अप्रत्यक्ष भी। वेश्यालय में उनका सी.एस.ई. प्रत्यक्ष रूप में होता है। किंतु मसाज पार्लरों में, डांस बारों में, फ्रेंन्ड क्लब में तथा अन्य बड़े-बड़े होटलों में और शैक्षणिक संस्थानों में आर्थिक गतिविधियां अप्रत्यक्ष रूप से सक्रीय रहती है और भारी धन पर्दे के पीछे कमाया जाता है। ऐसे अपराधों में संलग्न सभी व्यक्ति जैसे-होटल का मालिक, मैनेजर, बैरा, ग्राहक, वेश्यालय के संचालक, उसके मकान के मालिक एवं वहां तक पहुंचाने वाले व्यक्ति सभी इस अपराध के अभियुक्त के श्रेणी में आते हैं। पुलिस पदाधिकारियों को यह ध्यान में रखना होगा कि इसमें संलग्न महिलाएं अथवा लड़कियां पीड़िता होती हैं, न कि अभियुक्त और उन्हें सुधार गृह में भेजना चाहिए न कि जेल में। किसी भी स्थिति में बालकों, बालिकाओं अथवा महिलाओं को हथकड़ी नहीं लगाना चाहिए अथवा रस्से से नहीं बांधना चाहिए, अन्यथा पुलिस पदाधिकारी ही ऐसा करने पर अभियुक्त की श्रेणी में आ सकते हैं।

6. शोषण का व्यापारीकरण और पीड़ित का पण्यीकरण—इस व्यवसाय के शिकार व्यक्ति का शोषण इस प्रकार होता है कि वे क्रय-विक्रय की वस्तु बन जाते हैं। इस व्यवसाय में संलग्न व्यक्ति पैसा कमाते हैं। यह भी हो सकता है कि इससे होने वाली आमदनी पीड़िता का कुछ भाग पीड़िता को भी देते हों तथा इसे सहयोगी बताकर पुलिस द्वारा इन्हें भी गिरफ्तार कर लिया जाता है और उनके विरुद्ध आरोप पत्र दाखिल कर दिया जाता है और न्यायालय से उसे सजा भी हो जाती है। इस तरह का व्यवहार पुलिस को कभी नहीं करना चाहिए। क्योंकि यह उसकी विवशता होती है। ट्रैफिकिंग का शिकार महिला/लड़की न निकल भाग सकती है, न उसे सोचने की आजादी होती है और वह पूर्णतः शोषकों के कब्जे एवं निगरानी में रहती है। अतः मानवीय दृष्टि पुलिस को रखने से उनकी साख एवं विश्वास समाज में बढ़ेगा।

7. शिकार व्यक्ति को एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में विस्थापित करना—ऐसी संभावना रहती है कि इस अपराध के शिकार व्यक्ति को एक मकान से दूसरे मकान, एक गाँव से दूसरे गाँव, एक जिले से दूसरे जिले, एक राज्य से दूसरे राज्य अथवा कभी-कभी एक देश से दूसरे देश ले जाया जा सकता है। एक मकान में भी कई बार उनका विस्थापन जगह बदलकर किया जाता है। अतः इस प्रकार का स्थान परिवर्तन ट्रैफिकिंग कायम रखने और निरंतरता बनाये रखने के लिए विस्थापन माना जायेगा। ऐसी स्थिति में वे भी शामिल होंगे जो उन स्थानों, वाहनो (आई.टी.पी.ए. धारा-3 (1)), वे व्यक्ति जो किसी स्थान को वेश्यालय के रूप में प्रयुक्त करने का आदेश देते हैं, वे व्यक्ति आई.टी.पी.ए. की धारा-3(2), वे व्यक्ति जो शोषण के शिकार को वेश्यालयों में या शोषण के अन्य स्थानों में कैद रहते हैं (आई.टी.पी.ए. धारा-6) और वे व्यक्ति जो वेश्यावृति के लिए सार्वजनिक स्थानों का उपयोग करते हैं (आई.टी.पी.ए. धारा-7 (2)), के अंतर्गत सभी के विरुद्ध आरोप निर्मित होगा। पुलिस पदाधिकारियों को अपराध निर्माण के इ तथ्यों और कानून की इन धाराओं को अवश्य ही स्मरण में

रखना चाहिए।

8. उपरोक्त के अलावा निम्नलिखित व्यक्ति भी अभियुक्त की श्रेणी में आयेंगे—

क. ग्राहक : जो ट्रैफिकिंग की गई लड़की या स्त्री के साथ वेबिचार करते हैं। यह वही स्थिति है जो बाजार की मांग की निरंतरता को कायम रखते हैं। अतः प्रत्येक ग्राहक आई.टी.ए. एवं अन्य भारतीय दण्ड विधान की धाराओं के अन्तर्गत दण्ड के भागी हैं।

ख. पैसा लगाने वाले : वे सभी जो ट्रैफिकिंग में शामिल विभिन्न प्रक्रियाओं को पूरा करने के लिए रुपये लगाते हैं, वे सभी इस खडयंत्र के हिस्से हैं। अभियुक्त की श्रेणी में इन सभी को शामिल किया जा सकता है। जो उत्पीड़ित व्यक्तियों को हासिल करने, ले जाने, ठहराने और स्थान देने में पैसा लगाते हैं तथा वे लोग भी जो वेश्यालयों में रुपया उधार देने और उससे लाभ प्राप्त करने में संलग्न होते हैं। वे भी अभियुक्त हैं। अतः ऐसे सभी व्यक्ति जो अवैध व्यापार की विभिन्न प्रक्रियाओं हेतु धन उपलब्ध कराते हैं, इस अपराध के अंग होते हैं।

ग. दुष्प्रेरक : ऐसे सभी व्यक्ति जो शोषण और ट्रैफिकिंग में शामिल किसी भी प्रक्रिया के दुष्प्ररक या उसमें सहायक हों, आई.टी.पी.ए. की धाराएं-3, 4, 5, 6, 7, 9 तथा भा.द.वि. के अन्य धाराओं के अन्तर्गत दण्डनीय हैं। खुफिया सूचना देनेवाला, भर्ती करनेवाला, विक्रेता, खरीददार, ठेकेदार, दलाल अथवा कोई भी व्यक्ति जो उनके लिए कार्य करता हो।

घ. जो सी.एस.ई. की आमदनी पर रहते हों : वह व्यक्ति जो जानते हुए कि वेश्यावृति की कमाई पर पूर्णतः या अंशतः गुजारा कर रहे हैं, आई.टी.पी.ए. की धारा-4 के अंतर्गत दण्ड की भागी होते हैं। इसमें वे सभी व्यक्ति शामिल हैं, जो शोषण के प्राप्त किये गये अर्जित आर्थिक लाभ के हिस्सेदार हैं। होटल के संचालक भी आई.टी.पी.ए. की धारा-4 के अंतर्गत इस अपराध के दोषी हैं। ऐसे व्यक्ति जो व्यावसायिक यौन शोषण से प्राप्त आय पर गुजारा करते हैं, कोई भी व्यक्ति जो जानते बुझते हुए पूर्ण या आंशिक रूप से वेश्यावृति से अर्जित धन पर जीता है, दोषी है। इसमें शामिल प्रदाता जो वेश्यालय (या ऐसे होटल) से प्राप्त धन उधार देते हैं तथा ऐसे धन से व्यवसाय करते हैं, इस सेक्शन के अधीन दोषी हैं। होटल चलाने वाले ऐसे लोग जो लड़कियों के शोषण में धन अर्जित करते हैं, निःसंदेह सेक्शन 4, आई.टी.पी.ए. के तहत दोषी हैं।

ड. अन्य शोषणकर्ता : इसके अतिरिक्त पहचान करने वाला/नियुक्त करने वाला/बेचने वाला तथा शरण देने वाला, ये सभी इस संगठित अपराध के षडयंत्र के भागी होते हैं। वेश्यालय का प्रभारी तथा अन्य शोषणकर्ता, होटल के सभी कर्मचारी, चौकीदार, ड्राइवर इत्यादि (ITPA की धारा-3.1)। ट्रैफिक की हुई महिला का ग्राहक निस्संदेह एक शोषणकर्ता होता है। ऐसा व्यक्ति वह होता है जिसके कारण मांग पैदा होती है और व्यावसायिक यौन शोषण होता है। अतः ऐसा व्यक्ति आई.टी.पी.ए. तथा अन्य कानूनों के अंतर्गत दोषी होता है। ऐसे सभी व्यक्ति जो शोषण अथवा अवैध व्यापार की किसी भी प्रक्रिया में सहयोगी होते हैं अथवा समर्थन देते हैं, आई.टी.पी.ए. के अंतर्गत दोषी होते हैं। लगभग सभी अवैध व्यापार स्थितियों में अनेक व्यक्ति शोषण के विभिन्न चरणों में षडयंत्र में शामिल होते हैं। वे सभी षड्यंत्र रचने के दोषी होते हैं। यदि कई लोगों ने मिलकर योजना बनाई हो और उसके बाद उसे अमल में लाया गया हो, तो षड्यंत्र से जुड़ा कानून लागू होता है। आई.टी.पी.ए. के अनुसार जिन्होंने किसी परिसर को वेश्यालय के रूप में प्रयुक्त करने की योजना बनाई हो अथवा जो शोषण से प्राप्त आय पर जीते हों, चाहे आंशिक रूप से क्यों न हो अथवा वे जो व्यक्ति को वेश्यावृति हेतु खरीदते हैं या प्रलोभन देते हैं, वे सभी षड्यंत्रकारी हैं।

मानव व्यापार के अपराधों की व्यापकता :

फरवरी 1998 में सैकड़ों बांग्लादेशी बच्चे तथा महिलाएं विभिन्न भारतीय शरणार्थी शिविरों से स्वदेश वापसी का इंतजार कर रहे थे। (SANLAAP की कार्यकारी निदेशक, इन्द्राणी सिन्हा, वैश्वीकरण एवं मानव अधिकार का शोधपत्र) थाईलैंड एवं फिलिपींस सहित भारत में सेक्स व्यापार केन्द्रों में 13 लाख से भी अधिक बच्चें हैं। ये बच्चे गरीब इलाकों से होते हैं तथा तुलनात्मक रूप से अमीर क्षेत्रों में अवैध तरीके से भेजे जाते हैं। सीमा पार अवैध तरीके से भेजने में भारत भेजने वाला, प्राप्त करने तथा पारगमन का देश है। बांग्लादेश एवं नेपाल से बच्चे प्राप्त करना तथा महिलाओं एवं बच्चों को मध्यपूर्वी देशों में भेजना रोजमर्रा की बात है। भारत एवं पाकिस्तान 16 वर्ष से कम आयु के दक्षिण एशिया में तस्करी किए गए बच्चों के लिए मुख्य गंतव्य है।

1996 में बड़े छापों के दौरान मुम्बई के वेश्यागृहों से छुड़ाई गई वेश्यावृति में धकेली गई 484 लड़कियों में से 40 प्रतिशत से अधिक नेपाल की थी। (मासको ऐजिमा, दक्षिण एशिया से बाल वेश्यावृति के विरुद्ध एकजुट होने का आग्रह, राइटर्स-19 जून, 1998) भारत में कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश, महाराष्ट्र एवं तमिलनाडु वेश्यावृति में महिलाओं को झोंकने के लिए हाई सप्लाय जोन माने जाते हैं। बीजापुर बेलगाम एवं कोल्हापुर आम जिले हैं, जहां से महिलाएं, नियोजित तस्करी से संजाल के अंतर्गत बड़े शहरों को जाती है। महाराष्ट्र एवं कर्नाटक के सीमावर्ती जिले, जो देवदासी क्षेत्र के रूप में जाने जाते हैं में अवैध व्यापार के तंत्र विभिन्न स्तरों पर अभी भी कार्य करते हैं। यहां की महिलाएं वेश्यावृति में इसीलिए हैं कि या तो पतियों द्वारा त्याग दी गई है या उन्हें फुसलाकर अथवा धोखे से अवैध तरीके से लाया गया है। कई देवदासियां हैं, जिन्हें देवी येल्लम्मा के लिए वेश्यावृति को समर्पित किया गया है। कर्नाटक के एक वेश्यालय से सभी 15 लड़कियां देवदासी है।

अभी भी बांग्लादेशी महिलाएं एवं बच्चे विदेशी बन्दीगृहों, जेलों, आश्रयो एवं निगरानी गृहों में बन्द हैं तथा स्वदेश वापसी का इंतजार कर रहे हैं। कइयों को वर्षों से बंद रखा गया है। भारत से हमेशा महिलाएं एवं बच्चे मध्य पूर्व देशों में भेजे जाते हैं। बम्बई तथा पाकिस्तान के लिए अवैध करोबारियों के लिए कलकत्ता महत्वपूर्ण पारगमन केन्द्रों में से एक है। बांग्लोदश में 99 प्रतिशत महिलाएं जमीनी रास्तों के जरिए बांग्लादेश तथा भारत के सीमांत क्षेत्रों, जैसे-जेसोर, सतखिरा एवं राजशाही से अवैध तरीके से लायी जाती है। (ट्रैफिकिंग इन विमेन एण्ड चिल्ड्रन : द केसेस ऑफ बांग्लादेश, पृ-8 एवं 9, UBINIG 1995) भारत में आश्रयस्थलों में 200 बांग्लादेशी महिलाएं एवं बच्चे हैं जिन्हें अवैध तरीके से लाया गया है तथा जो स्वदेश वापसी का इंतजार कर रहे हैं।

भारत, पाकिस्तान एवं मध्य पूर्व में वेश्यावृति तथा घरेलू कार्यों वाली लड़कियों को प्रताड़ित किया जाता है, उन्हें कैदी जैसी स्थिति में रखा जाता है, सेक्स संबंधी दुर्व्यवहार तथा बलात्कार किया जाता है। मुम्बई में 9 वर्ष आयु तक के छोटे बच्चों को 60000 रुपयों या 2000 यूएस डॉलर्स में नीलामी में अरब के शेखों द्वारा भारतीयों से प्रतिवर्ष खरीदा जाता है, जिन्हें यह अंध-विश्वास है कि एक अक्षत छोटी उम्र की बालिका के साथ सोने से गनोरिया तथा सिफिलिस की बीमारियां ठीक हो जाती है।

भारत के विभिन्न वेश्यालयों में अभी भी एक सर्वेक्षण के अनुसार 1,60,000 नेपाली महिलाएं अवैध देह व्यापार में संलग्न है। मुंबई में वेश्यावृति में लिप्त लगभग 50,000 की संख्या में महिलाएं नेपाल से लाई गई हैं। भारत के वेश्यालयों में 1,00,000 में 1,60,000 के बीच नेपाली महिलाएं तथा उन लड़कियों में से 35 प्रतिशत को झूठे वादे या अच्छी नौकरी के आश्वासन के झांसे में लाई गई थी। एक सर्वेक्षण के अनुसार प्रतिदिन लगभग 5,000-7,000 नेपाली भारत लाई जाती है।

भारत के वेश्यालयों में 1,00,000-1,60,000 नेपाली लड़कियों से वेश्यावृति कराई जाती है। भारत में वार्षिक रूप से अवैध तरीके से लायी जा रही नेपाली लड़कियों की औसत आयु पिछले दशक में 14-16 वर्ष से गिरकर 10-14 वर्ष हो गई है। मुंबई में एक वेश्यालय में सिर्फ नेपाली महिलाएं हैं। जिन्हें लोग उनकी सुनहरी चमड़ी तथा नर्म स्वभाव के कारण खरीदते हैं। भारत में 2.5 प्रतिशत वेश्याएं नेपाली हैं तथा 2.7 प्रतिशत बांग्लादेशी।

एक धनाढ़्य हाईस्कूल में सर्वेक्षण किए गए छात्रों में से 70 प्रतिशत नियोजित अपराध में करीयर बनाने की इच्छा रखते हैं तथा इसके लिए अच्छे धन तथा मौज मस्ती को कारण बताते हैं। (रॉबर्ट आई फ्रिडमैन, भारत के लिए शर्म सेक्स की दासता एवं राजनीतिक भ्रष्टाचार एड्स महामारी की ओर बढ़ा रहे हैं, द नेशन, 8 अप्रैल, 1996।)

रोकथाम के उपाय एवं संबंधित कानून :

ट्रैफिकिंग के मामलों में अन्य जिन कानूनों का उपयोग किया जा सकता है वे निम्न प्रकार हैं:

1. इम्मॉरल ट्रैफिक (प्रिवेन्शन) एक्ट, 1956 (आई.टी.पी.ए.)

2. जुवेनाइल जस्टिस (केयर एंड प्रोटेक्शन ऑफ चिल्ड्रेन) एक्ट, 2000 (जेजे एक्टए 2000)

3. इंडियन पीनल कोड, 1860 (आई.पी.सी.)

4. प्रॉसिज्योर से संबंधित कानून (क्रिमिनल प्रॉसिज्योर कोड अर्थात सी.आर.पी.सी. इंडियन एविडेस एक्ट इत्यादि)

5. सी.आर.पी.सी. की वे धाराएं, जिनका संबंध अपराध रोकने यानी उसे न होने देने से है।

6. इस सिलसिले में लागू हो सकने वाले अन्य कानून, जैसे ट्रैफिकिंग कि शिकार व्यक्ति (स्त्री-पुरुष) का शोषण अश्लील सामाग्री तैयार करने के लिए किया जाता है और किसी इलेक्ट्रानिक माध्यम से अथवा इंटरनेट के जरिए इस सामाग्री को प्रसारित किया जाता है तो इन्फोमेशन टेक्नोलॉजी एक्ट, 2000 (यानी आई.टी. एक्ट की धारा-67) का इस्तेमाल किया जा सकता है।

पुलिस को गिरफ्तार करने के अधिकार का कानूनी पहलू :

पुलिस किसी व्यक्ति पर अपराध का आरोप होने पर ही उसे गिरफ्तार कर सकती है। केवल शिकायत अथवा शक के आधार पर किसी को गिरफ्तार नहीं किया जा सकता। कुछ मामलों में पुलिस अभियुक्त को बिना वारंट के भी गिरफ्तार कर सकती है। ऐसे मामले निम्नलिखित हैं :

अभियुक्त पर संज्ञेय अभियोग हो अथवा उसके खिलाफ ठोस शिकायत की गई हो या ठोस जानकारी मिली हो या अपराध में उसके शामिल होने का ठोस शक हो, अथवा

अभियुक्त के पास सेंध लगाने का कोई औजार पकड़ा जाए और वह ऐसे औजार के अपने पास होने का समुचित कारण नहीं बता सके, अथवा

अभियुक्त के पास ऐसा समान हो, जिसे चोरी का समझा जाने का कारण हो अथवा जिस व्यक्ति पर चोरी करने या चोरी के माल की खरीद फरोख्त करने का शक करना वाजिब लगे, अथवा

अभियुक्त घोषित अपराधी हो, अथवा

अभियुक्त किसी पुलिस अधिकारी के कर्तव्य पालन में बाधा पहुंचाये, अथवा

अभियुक्त पुलिस कानूनी हिरासत से फरार हो जाए, अथवा

अभियुक्त के खिलाफ पक्का संदेह हो कि वह सेना का भगोड़ा है, अथवा

अभियुक्त छोड़ा गया अपराधी हो, लेकिन उसने फिर कानून तोड़ा हो, अथवा

अभियुक्त संदेहास्पद चाल-चलन का हो या आदतन अपराध करने वाला हो, अथवा

अभियुक्त पर असंज्ञेय अभियोग हो और वह अपना नाम-पता नहीं बता रहा हो। (इस स्थिति में नाम पता

बता देने तक ही उसे गिरफ्तार रखा जा सकता है)

इनके अलावा, अन्य मामलों में किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने के लिए मजिस्ट्रेट का वारंट जरूरी है। चाहे कोई भी मामला हो, गिरफ्तार किए जाते समय व्यक्ति को उसका अपराध तथा गिरफ्तारी का आधार बताया जाना चाहिए। उसे यह भी बताया जाना चाहिए कि उस अभियोग पर उसे जमानत पर छोड़ा जा सकता है या नहीं।

गिरफ्तारी के समय व्यक्ति पुलिस से वकील की मदद लेने की इजाजत मांग सकता है। उसके मित्र और संबंधी भी उसके साथ थाने तक जा सकते हैं।

अगर कोई व्यक्ति गिरफ्तारी का प्रतिरोध नहीं कर रहा हो, तो गिरफ्तारी के समय पुलिस उससे दुर्व्यवहार नहीं कर सकती, न ही मार-पीट कर सकती है। अगर वह पुराना अपराधी नहीं है या उसके हथकड़ी नहीं पहनाई जा सकती।

अगर किसी महिला को गिरफ्तार किया जाता है, तो पुलिस का सिपाही उसे छू तक नहीं सकता। महिला सिपाही या कर्मी का होना आवश्यक है।

गिरफ्तारी के तुरंत बाद व्यक्ति को थाने के प्रभारी अथवा मजिस्ट्रेट के पास लाया जाना चाहिए। किसी भी स्थिति में गिरफ्तार व्यक्ति को 24 घंटे के भी मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाना चाहिए। (इसमें गिरफ्तार व्यक्ति की गिरफ्तारी के स्थान से मजिस्ट्रेट के पास ले जाए जाने का समय शामिल नही है।) किसी भी व्यक्ति को मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना 24 घंटे से ज्यादा समय तक पुलिस हिरासत में नही रखा जा सकता।

पुलिस हिरासत की सावधानियां :

पुलिस हिरासत में किसी व्यक्ति को परेशान नहीं किया जाना चाहिए अथवा उसे यातना नहीं दी जानी चाहिए। अगर कोई पुलिसकर्मी हिरासत में किसी व्यक्ति को सताता है या यातना देता है, तो उस व्यक्ति को पुलिसकर्मी की पहचान कर उसके खिलाफ आपराधिक आरोप दर्ज कराने चाहिए। अगर हिरासत मे महिला के साथ बलात्कार तथा यौन-संबंधी दुर्व्यवहार होता है तो उसे तुरंत डॉक्टरी जांच की मांग करनी चाहिए तथा मजिस्ट्रेट से शिकायत करनी चाहिए। किसी महिला को केवल महिलाओं वाले लॉकअप में रखा जाना चाहिए। अगर किसी थाने में ऐसी व्यवस्था नहीं है हिरासत में ली गई महिला को मांग करनी चाहिए कि उसे ऐसे थाने में भेजा जाएं, जहां महिलाओं के लिए अलग लॉक अप है।

जमानत संबंधी प्रावधान :

अगर अपराध गैर जमानती (जमानती अपराध-मानहानि, चोट पहुंचाना, लापरवाही की वजह से किसी की मृत्यु हो जाना, व्याभिचार, दंगा फैलाना और सार्वजनिक शांति भंग करना। गैर-जमानती अपराध-चोरी, डकैती, हत्या तथा राज सत्ता के खिलाफ अपराध।) नहीं है, तो पुलिस को गिरफ्तार व्यक्ति को जमानत पर छोड़ना ही होगा। जमानत पर छोड़ा जाना व्यक्ति का अधिकार है। अगर पुलिस अधिकारी या मजिस्ट्रेट पर्याप्त समझे तो व्यक्ति को निजी मुकाबले या बंध-पत्र पर भी छोड़ा जा सकता है। जमानत और मुचकले पर रिहा व्यक्ति को जब भी अफसर या अदालत तलब करे, हाजिर होना होगा।

प्रतिभू अर्थात जमानती, मित्र या रिश्तेदार भी हो सकते है। उन्हें संबद्ध अधिकारी द्वारा निर्धारित रकम के जमानत बांड पर हस्ताक्षर करने होते हैं। इसका मतलब है कि अगर बुलाए जाने पर अभियुक्त अदालत में या अधिकारी के सामने हाजिर नहीं होता तो बांड की रकम देनी होगी। बाद में जमानती, मजिस्ट्रेट के पास आवेदन कर सकता है कि उसे बांड की जिम्मेदारी से मुक्त किया जाए।

पुलिस जांच के आवश्यक पहलू :

जब पुलिस में शिकायत दर्ज की जाती है अथवा उसे अन्य स्रोतों से अपराध के बारे में जानकारी हासिल होती है, तो पुलिस अधिकारी अपराध के संभावित स्थान

पर जांच के लिए जाता है। वह अपराध के मामले से जुड़े लोगों, अपराध के स्थान पर रहने वाले लोगों तथा अभियुक्त के संबंद्ध लोगों से पूछताछ करता है।

अगर जांच के दौरान पुलिस आपसे पूछताछ करे तो आपको अपनी जानकारी की बातें सही सही बताते हुए पुलिस के साथ सहयोग करना चाहिए। संभव हो तो आपको अपराध का सुराग भी पुलिस को देना चाहिए और जुबानी पूछताछ का उचित जवाब देना चाहिए। आपके लिए न तो किसी लिखित बयान पर दस्तखत करना जरूरी है, न ही आपको वे सब बाते लिख कर देनी होती है जो आपने जुबानी बताई है।

अभियुक्त से पूछताछ

अभियुक्त को पूछताछ के दौरान पुलिस से सहयोग करना चाहिए। उसे सावधान भी रहना चाहिए कि पुलिस उसे झूठे मामले में न फंसाये। उसे किसी कागज पर बिना पढ़े या उसमें लिखी बातों से सहमत हुए बिना हस्ताक्षर नहीं करने चाहिए। किसी महिला और 15 साल से छोटे पुरुष को पूछताछ के लिए घर से बाहर नहीं ले जाया जा सकता। उनसे उनके घर पर ही पूछताछ की जा सकती है। पूछताछ ऐसे उल्टे-सीधे वक्त पर नहीं की जानी चाहिए जिससे कोई व्यक्ति परेशान हो। व्यक्ति मजिस्ट्रेट से अनुरोध कर सकता है कि उससे पूछताछ का उचित पूछताछ का उचित वक्त तय कर दिया जाए।

पूछताछ के दौरान व्यक्ति ऐसे किसी सवाल का जवाब देने से मना कर सकता है जिससे उसे लगे कि उसके खिलाफ आपराधिक मामला बनाया जा सकता है। पूछताछ के दौरान कानूनी (कानूनी की) या अपने किसी मित्र की सहायता की मांग कर सकता है और आम तौर पर ऐसी सहायता को पुलिस मान लेती है। धमकी या बहकावे में आकर कोई बयान नहीं देना चाहिए।

तलाशी :

अदालत/मजिस्ट्रेट के तलाशी वारंट के बिना पुलिस किसी के घर की तलाशी नहीं ले सकती। आम तौर पर चोरी के समान, फर्जी दस्तावेज, जाली मुहर, जाली करेंसी नोट, अश्लील सामग्री तथा जब्त-शुदा साहित्य की बरामदगी के लिए तलाशी ली जाती है। अपहृत तथा गैरकानूनी तरीके से बंद किए गए व्यक्ति का पता लगाने के लिए भी तलाशी ली जाती है। पुलिस अधिकारी (अथवा वारंट में जिस व्यक्ति को तलाशी लेने के लिए अधिकृत किया गया हो) को तलाश के स्थान पर मौजूद संदिग्ध व्यक्तियों और वस्तुओं की तलाशी लेने देनी चाहिए। उसे बंद कमरों और बंद बाक्सों की तलाशी भी लेने देनी चाहिए। तलाशी और माल बरामदगी इलाके दो निष्पक्ष तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियों की उपस्थिति में की जानी चाहिए। पुलिस को जब्त सामान का ब्यौरा देते हुए पंचनामा तैयार करना चाहिए। इस पर दो स्वतंत्र गवाहों के भी हस्ताक्षर होने चाहिए और इसकी एक प्रति उस व्यक्ति को भी दी जानी चाहिए जिसके घर/इमारत की तलाशी ली गई हो। तलाशी लेने वाले अधिकारी की भी तलाशी शुरू करने से पहले, तलाशी ली जा सकती है।

कोई पुरुष किसी महिला की शारीरिक तलाशी नहीं ले सकता, लेकिन वह महिला के घर या कारोबार के स्थान की तलाशी ले सकता है।

उच्चतम न्यायालय का निर्देश है कि गिरफ्तार व्यक्ति को अपनी गिरफ्तारी और हिरासत में लिए जाने की सूचना अपने मित्र, संबंधी या किसी अन्य व्यक्ति को देने का अधिकार है। गिरफ्तार करने वाले अधिकारी को किसी व्यक्ति को गिरफ्तार कर थाने ले जाते समय उसके इस अधिकार का अवश्य जानकारी देनी चाहिए। जिस व्यक्ति को गिरफ्तार किए जाने वाले व्यक्ति ने अपनी गिरफ्तारी की जानकारी दी है, उसका नाम पुलिस की डायरी में दर्ज किया जाना चाहिए।

मानव ट्रैफिकिंग विरोधी आयाम :

ट्रैफिकिंग के विभिन्न आयामों की गहरी समझ स्पष्टतः ट्रैफिकिंग के निवारण और मुकाबला करने में

सहायक सिद्ध होगा। दूसरे सहायक एजेंसियों से समन्वय बाा अति-आवश्यक है। कानून प्रवर्तन की एजेसियों को अन्य विभागों, जैसे-स्वास्थ्य, समाज कल्याण, श्रम, महिला एवं शिशु विभाग, सुधार प्रशासन विभाग, विकास विभाग, पंचायती राज संस्थाएं इत्यादि से निकट संबंध बनाए रखने की जरूरत है। इन सरकारी एजेंसियों को भी चाहिए कि इस क्षेत्र में कार्यरत गैरसरकारी संगठनों से आवयाविक साझेदारी विकसित करें। पुलिस प्रबंधकों, खासकर एसपी/डीएसपी को इन सभी संस्थाओं और विभागों से पुलिस की नजदीकी साझेदारी विकसित कर एक मानव ट्रैफिकिंग विरोधी एकक गठित करना चाहिए। इस तरह की इकाई, वर्तमान परिस्थिति में, ट्रैफिकिंग को रोकने और उसका मुकाबला करने में सर्वोत्तम यंत्र है। मानव ट्रैफिकिंग विरोधी इकाई में रखे जाने वाले अधिकारियों और गैरसरकारी संगठनों को विशेष रूप से प्रशिक्षित तथा अभिमुखीकृत किया जाना चाहिए। प्रत्येक स्टेकधारी की भूमिका को परिभाषित करने के लिए नियमावली बनाई जानी चाहिए। इस इकाई का दायरा बढ़ा कर इसमें औद्योगिक निगमों को भी शामिल किया जाना चाहिए, ताकि वे न केवल कार्यक्रमों के संचालन के लिए कोष संग्रह में, बल्कि उत्तरजीवियों के सशक्तिकरण में उपयुक्त समर्थन तथा सहयोग देने, उनकी सेवाओं का उपयोग उत्पादक गतिविधियों के लिए करने, उनके द्वारा पैदा किया गया सामान बिकवाने आदि में अपनी कारपोरेट सामाजिक जिम्मेदारी (सीएसआर) की सेवाएं दे सकें।

सीआरपीसी की निवारक धाराओं का उपयोग :

सीआरपीसी की धारा-110 में अपराधों के निवारण के लिए काफी गुंजाइश है। ये शक्तियां एग्जीक्यूटिव मजिस्ट्रेट को दी गई है। मजिस्ट्रेट किसी को भी अच्छे व्यवहार के लिए बधित कर सकता है। इसके अलावा सीआरपीसी की धारा 111, 116, 121 और 122 के तहत उठाए गए कदम संभावित अपराधियों के विरुद्ध निवारक कार्रवाई का काम कर सकते हैं।

आइटीपीए की धारा निम्न हैं :

धारा-3 : वेश्यालय चलाना या वेश्यालय के रूप में किसी स्थान का उपयोग करने की अनुमति देना।

धारा-4 : वेश्यावृति की कमाई पर जीना

धारा-5 : उपलब्ध करना, प्रेरित करना या वेश्यावृति के लिए व्यक्तियों को ग्रहण करना।

धारा-6 : जहां वेश्यावृति की जाती है, उस स्थान पर किसी व्यक्ति को कैद रखना।

धारा-7 : सार्वजनिक स्थानों पर या उसके आसपास वेश्यावृति।

धारा-8 : वेश्यावृति के उद्देश्य से प्रलुब्ध करना, आमंत्रित करना। (नोट-अपराधी पुरुष भी हो सकता है और स्त्री भी। यद्यपि धारा-8 (ए) में सिर्फ स्त्री का जिक्र है, उसके उपबंध में पुरुषों का भी जिक्र है।)

धारा-9 : संरक्षित व्यक्ति को प्रलुब्ध करना।

धारा-18 : वेश्यालय को बंद करना तथा उस स्थान से अपराधियों का निष्कासन।

समुचित आंकड़ा कोष निर्मित एवं विकसित करना :

अपराध प्रबंधन का एक आवश्यक पहलू है। समुचित आंकड़ा कोष विकसित करना। यह न केवल ट्रैफिकिंग का मुकाबला करने के लिए बल्कि उसी रोकथाम के लिए भी बेहद जरूरी है। भारत के अधिकांश जिलों में आंकड़े कोष न तो निर्मित किया गया जा सका है और न ही विकसित। इसके अभाव में मानव व्यापार से संबंद्ध मामलों में अपेक्षित सहूलियत पुलिस पदाधिकारियों को नहीं मिल पा रहा है। जिला स्तर पर इसका एक फोटो-एल्बम एवं निर्देशिका में संग्रह कर रखने की आवश्यकता है। इससे जुड़े व्यवसायिक अपराधियो का फोटो-एल्बम एवं निर्देशिका में संग्रह कर रखने की आवश्यकता है। इससे जुड़े व्यवसायिक अपराधियों का फोटो-एल्बम एवं इन्टरनेट पर पुलिस-नेट पर संधारण भी आवश्यक है। ताकि राष्ट्रीय स्तर पर ऐसे अपराधियों की सुगमता से

आदान प्रदान संभव हो सके। रेलवे स्टेशनों एवं प्रमुख पुलिस स्टेशन पर भी बोर्ड में ऐसे अपराधियों के चित्र प्रमुखता से प्रदर्शित किये जा सकते हैं, जिससे उसे गिरफ्तार करने में आसानी हो सके।

फिलहाल आंकड़ा कोष का अभाव कानून प्रवर्तन की राह में एक प्रमुख बाधा है। चूंकि गवेषणा (जांच) अधिकारी कमोवेश अपने अपने अधिकार क्षेत्रों तक सीमित रहते हैं। एसपी/डीएसपी जैसे पुलिस प्रबंधकों तथा उच्चतर इकाइयों को न केवल ट्रैफिककर्ताओं और शोषणकर्ताओं के बारे में, बल्कि उत्पीड़ितों और उत्तरजीवियों के बारे में भी आंकड़ा कोष विकसित करने की दिशा में पहल करनी चाहिए। आंकडा कोष में ये सूचनाएं शामिल होनी चाहिए। अपराधियों के बारे में पूरा विवरण, ट्रैफिककर्ताओं का कार्य क्षेत्र, उनके नेटवर्क, स्रोत, पारगमन, लक्ष्य बिंदु के विवरण इत्यादि। इस कोश का नियमित रूप से अद्यतन (अपडेट) करना चाहिए। आंकड़ा कोश का दूसरा पहलू है आंकड़ों का विश्लेषण। इससे आपराधिक आसूचना का विकास करने में सहायता मिलेगी। आंकड़ा कोश का तीसरा पहलू है सभी संबंद्ध पक्षों से आपराधिक आसूचना की साझेदारी और ट्रैफिकिंग से संघर्ष करने और रोकने के लिए समुचित कार्रवाई शुरू करने का पहल करना। आंकड़ों और आसूचना का मिलान, विश्लेषण और प्रसार पुलिस कार्य के प्रोफेशनल पहलू हैं। अतएव इसकी जिम्मेदारी पुलिस प्रबंधकों की ही है। इस क्षेत्र में काम कर रहे गैरसरकारी संगठनों को शामिल करना और उपर्युक्त सभी गतिविधियों में पूर्ण रूप से उन्हें जोड़ना अपेक्षित है।

लापता बच्चों के विवरण उन पुलिस एजेंसियों को दें, जो ट्रैफिक किए गए व्यक्तियों को मुक्त कराने में लगे हुए हैं, ताकि वे फॉलोअप कर सकें।

अतः उपरोक्त बातों पर पूरी संवेदनशीलता के साथ पुलिस पदाधिकारियों को पहल करने की आवश्यकता है। वे कानून की पूरी जानकारी रखते हुए ही ऐसे अपराधों की रोकथाम के लिए सक्षम हो सकेंगे। उन्हें हमेशा तत्पर और जागरूक रहने की आवश्यकता है तथा विभाग एवं सरकार को भी इस ओर विशेष कार्य-योजनाओं को बनाकर उसे लागू करने के लिए एक नये समझ और सोच निर्मित करने की आवश्यकता है। ❑

भारत में जेल सुधार : प्रयास एवं संभावनाएं

डॉ. सुरेन्द्र कटारिया

व्याख्याता (लोक प्रशासन)

81/91, नीलगिरी मार्ग,

मानसरोवर, जयपुर-20

राज्य नामक संस्था का उदय एवं प्रसार मानव समाज को नियंत्रित, निर्देशित तथा एकीकृत बनाए रखने हेतु हुआ है ताकि सामाजिक स्तर पर व्यवहार के निश्चित प्रतिमान एवं मूल्य विकसित किए जा सकें। दरअसल, यह सब कमजोर, पीड़ित तथा अभागे व्यक्तियों के कल्याण हेतु है। मानव समाज में सर्वमान्य मूल्य तथा कानून स्थापित करने हेतु राज्य को कठोर नीतियों सहारा लेना पड़ता है और इस कार्य में 'पुलिस' नामक संस्था राज्या या सरकार के दायित्वों की पूर्ति करती है। इसी क्रम में न्यायालयों तथा कारागारों की अवधारणा विकसित हुई है। दुर्भाग्य से जेल या कारागार शब्द का उच्चारण मात्र ही नकारात्मक परिदृश्य उत्पन्न करता है। ऐसा सामाजिक स्तर पर ही नहीं बल्कि राजनीतिक एवं प्रशासनिक स्तरों पर भी स्पष्टतः दिखाई देता है।

कारागारों के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण ने देश भर की जेलों को लगभग 'नरक के समान' बना दिया है। स्थिति यह है कि जेलों में उनकी क्षमता से प्रायः 40 प्रतिशत कैदी अधिक रहते हैं तथा इन कैदियों में लगभग 75 प्रतिशत कैदी विचाराधीन हैं जो देश की शिथिल न्यायिक प्रणाली के चलते अनावश्यक यातना झेलने को विवश है। जेलों में सुरक्षा की स्थिति का प्रमाण यह है कि भारत में औसतन प्रतिवर्ष 500 कैदी विभिन्न जेलों से भागते हैं। इनमें दंतेवाड़ा (2007) जहानाबाद 2005 जैसी भयावह घटनाऐ भी सम्मिलित है जिनमें सैकड़ों कैदी जेल में विद्रोह कर फरार हो गए थे। कैदियों हेतु भोजन, विश्राम, मनोरंजन, श्रम, स्वास्थ्य तथा उनके मानवाधिकारों सम्बन्धी मुद्‌दों पर राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग बार-बार तल्ख टिप्पणियां करते हुए सरकार को निर्देश जारी कर चुका है।

जेल प्रशासन का उदय

भारत में पुलिस प्रशासन के अभिन्न अंग के रूप में विभिन्न श्रेणियों की जेलें, उनके कैदियों की रक्षा एवं कल्याण तथा जेलों का रख-रखाव भी सम्मिलित है। संविधान की सातवीं अनुसूची की दूसरी सूची अर्थात् राज्य सूची की चौथी प्रविष्टि में यह वर्णन है कि— "कारागाह, सुधारात्मक, बोर्स्टल संस्थाएं और उसी प्रकार की अन्य संस्थाएं तथा उनमें निरुद्ध व्यक्ति, कारागाहों एवं अन्य संस्थाओं के उपयोग के लिए अन्य राज्यों में इन्तजाम विषय राज्य सरकारों का दायित्व होगा।" यद्यपि कारागार प्रशासन राज्य सरकारों का दायित्व है तथापि इस दिशा में केन्द्र सरकार द्वारा पर्याप्त मात्रा में दिशा-निर्देश जारी होते रहें हैं।

भारत में कारागार व्यवस्था में सुधार ब्रिटिश शासन के दौरान शुरू हो चुके थे। सन् 1836 में गठित हुई 'कारागार जांच समिति' के पश्चात् कैदियों से सड़क निर्माण में मजदूरी लेने का कार्य बन्द हुआ। सन् 1638 में लॉर्ड मैकाले के सुझाव पर एक और 'कारागार सुधार समिति' गठित हुई जिसकी सिफारिशों में एक हजार कैदियों वाले केन्द्रीय कारागारों की स्थापना, कारागार नियंत्रण हेतु राज्यों में कारागार निरीक्षक की नियुक्ति तथा महिला कैदियों हेतु पृथक व्यवस्था करना सम्मिलित थी। सन् 1862 में 'द्वितीय कारागार जांच समिति' गठित हुई, जिसने कारागारों में गन्दगी तथा अस्वास्थ्यकर दशाओं पर गंभीर चिंता प्रकट करते हुए तत्काल उपाय करने के सुझाव दिए। समिति ने 15 प्रतिशत कैदियों हेतु एकान्त सुविधा तथा कारगार में चिकित्सक की नियुक्ति के भी सुझाव दिए। इसी क्रम कें सन् 1866 से कारागारों

में चिकित्सक नियुक्त होने लगे।

सन् 1894 में बने कारागार अधिनियम के पश्चात् देश में कारागारों में व्यवस्था स्थापित होने लगी तथा एकरूपता का निर्माण हुआ। इसी अधिनियम के माध्यम से कारागारों में कोड़े लगाने की प्रथा समाप्त हुई तथा दण्ड का स्वरूप परिवर्तित हुआ। बोर्स्टल तथा सुधार विद्यालय अधिनियम, 1898 के द्वारा बालक एवं किशोर अपराधियों हेतु पृथक केन्द्र स्थापित होने लगे। अलैक्जैण्डर कार्डयू की अध्यक्षता में बनी कारागार सुधार समिति (1919-20) ने कारागारों में कठोरता के स्थान पर मानवीय दृष्टिकोण से युक्त सुधारों पर बल दिया। सन् 1919 के भारत सरकार अधिनियम के द्वारा कारागार प्रान्तीय विषय बनाया गया। सन् 1946 में बनी कारागार सुधार समिति ने कैदियों का वर्गीकरण करते हुए उन्हें बाल अपराधी, वयस्क अपराधी, महिला अपराधी, अभ्यस्त अपराधी, आकस्मिक अपराधी तथा मनोरोगी अपराधी के रूप में बांटा। इस समिति ने बाल अपराधियों के प्रति अधिक उदारता एवं सतर्कता बरतने पर बल दिया। सन् 1949 में कारागार सुधारों पर बनी पकवासा समिति ने कैदियों हेतु मनोचिकित्सक पद्धति अपनाने, अच्छे व्यवहार हेतु 'गुडटाईम भत्ता' देने तथा सुधार गृह एवं आदर्श जेल स्थापित करने के सुझाव दिए जो कि सरकार द्वारा स्वीकार कर क्रियान्वित हुए।

कारागार सुधारों पर बनी न्यायमूर्ति ए.एन. मुल्ला समिति (1980-83) का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। समिति ने दिल्ली की तिहाड़ जेल तथा आगरा के सम्प्रेक्षण गृहों में बाल अपराधियों को गम्भीर अपराधियों के साथ रखने एवं इनके साथ हो रहे दुर्व्यवहार पर गम्भीर चिन्ता प्रकट की। समिति ने कारागारों में भौतिक सुविधाएं बढ़ाने, कैदियों के उत्तरवर्ती पुनर्वास को कारागार व्यवस्था का अभिन्न अंग मानने, मीडिया के माध्यम से स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा कारागारों का निरीक्षण करने, विचाराधीन तथा दोषसिद्ध कैदियों को पृथक-पृथक रखने तथा सरकार द्वारा कारागार प्रशासन को पर्याप्त वित्तीय सहायता देने की सिफारिशें कीं। मुल्ला समिति की मुख्य सिफारिश यह थी कि कारागार प्रशासन को संविधान की समवर्ती सूची में लाया जाए तथा कारागार व्यवस्था पर एक राष्ट्रीय नीति बने। इस समिति की सिफारिशों के पश्चात् किशोर न्याय अधिनियम, 1986 पारित किया गया।

वर्ष 1987-88 में महिला कैदियों की स्थिति सुधार हेतु न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर समिति बनी जिसने अधिक महिला पुलिसकर्मियों की नियुक्ति करने तथा विशेष बाल अपराध प्रकोष्ठ बनाने के सुझाव दिए।

भारत में कारागार सुधार के क्रम में सन् 1993 में गठित राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की रिपोर्ट एवं अनुशंसाएं तथा विभिन्न प्रकरणों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सुनाए गए निर्णयों की महत्ती भूमिका रही है। किन्तु इस दिशा में पर्याप्त एवं संतोषजनक सुधार अभी नहीं हुए हैं।

विकट होती स्थिति

सन् 2006 के आंकड़ों के अनुसार देश में विभिन्न श्रेणी की 1312 जेलें हैं जिनमें मात्र 15 महिला जेल हैं। इन जेलों की कुल स्थापित क्षमता 2.48 लाख कैदी रखने की है जबकि इनमें 3.58 लाख कैदी हैं। भारतीय अदालतों में लग रहे लम्बित मुकदमों के अम्बार ने जेलों के स्वास्थ्य तथा गणित दोनों का गड़बड़ा दिया है। मोबाइल फोन सुविधा ने जेल प्रशासन के लिए नयी प्रकार की दुविधाएं उत्पन्न कर दी हैं। समस्त प्रकार के प्रयासों के उपरान्त भी जेलों में खूंखार अपराधी एवं आतंकवादी मोबाइल फोन संचालित करने में सफल रहते हैं तथा इससे उनकी आपराधिक गतिविधियां बदस्तूर जारी रहती है। ऐसे अपराधियों हेतु जेल, वास्तव में सजा घर नहीं बल्कि सुरक्षित आरामगाह होती है जहां से वे मनमाफिक निर्देश जारी कर अपराध संचालित कराते हैं तथा प्रतिद्वंदी उन्हें नुकसान भी नहीं पहुंचा सकता है।

दूसरी ओर राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश,

झारखण्ड तथा बिहार सहित अन्य बहुत से राज्यों में जेल प्रहरियों के पद खाली हैं। पहली बात तो यह कि भारतीय जेलों में क्षमता से अधिक कैदी हैं। दूसरी यह कि जेल प्रहरियों के निर्धारित मापदण्डों से कम पद स्वीकृत हैं, जिस पर भी हालात ये कि इन कम स्वीकृत पदों में भी एक तिहाई खाली रहते हैं। डॉ. प्रीति मिश्रा तथा विनोद मिश्रा द्वारा प्रस्तुत एक शोध निष्कर्ष के अनुसार भारतीय जेलों में 43,476 अधिकारियों की आवश्यकता है जबकि 14,659 अधिकारी ही कार्यरत हैं। दूसरी ओर अधीनस्थ स्तर पर 43,375 कार्मिकों की आवश्यकता है जबकि कार्यरत कार्मिक मात्र 36,211 हैं। जेलों में कार्मिकों की कमी नए-नए संकट उत्पन्न कर रही है। यही स्थिति प्रशिक्षकों के संदर्भ में है। देश में 914 जेल प्रशिक्षकों की आवश्यकता है जबकि कार्यरत प्रशिक्षकों की संख्या 622 ही है। जले पर नमक छिड़कने तथा चिन्ताजनक मुद्दा यह है कि सहायक जेलर से लेकर डीआईजी रैंक के पदाधिकारी स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति मांग रहे हैं। अकेले राजस्थान में सन् 2009 में 15 जेल अधिकारियों ने स्वैच्छिक सेवानिवृति ली है तथा अभी भी 18 अधिकारियों के आवेदन राज्य सरकार के पास विचाराधीन हैं। रसूखदार कैदियों की धमकियों, अल्प सुविधाओं, कार्य बोझ, शिथिल तंत्र, उपेक्षित रवैये तथा राजनीतिक दबावों के चलते तनावग्रस्त जेलकर्मी और कर भी क्या सकते हैं?

सामान्य सुविधाओं से विहीन भारतीय जेलों की बदहाली का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि 18 फरवरी, 2010 को राजस्थान के चित्तौड़गढ़ जिले की जिला कारागार से भागे 23 कैदियों को यह पता था कि जेल के मुख्य द्वार का ताला खराब है अतः उन्होंने न केवल सुरक्षाकर्मियों की पिटाई की बल्कि उनकी राइफलें एवं चाबियां भी छीन ले गए। दूसरी ओर जोधपुर जेल में कैदियों के मोबाइल फोन निष्क्रिय करने हेतु 'जैमर' लगाए गए तो अपराधियों ने जैमर ही जाम करा दिए। जेलों में या तो चिकित्सालय सुविधा नहीं है और यदि है तो उनमें डॉक्टर्स की नियुक्ति नहीं है। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट (2003-04) के अनुसार राजस्थान की सभी जेलों के लिए मात्र 15 डॉक्टर्स के पद स्वीकृत थे तथा अधिकांश जिला स्तरीय जेलों में 100 रुपए प्रतिमाह पर डॉक्टर्स को 'ऑन कॉल' रखा गया था।

कभी नशा खिलाकर, कभी मारपीट करके, कभी दीवार फांद कर तो कभी सैंध मारकर भारतीय जेलों से कैदी भागते रहे हैं। कहते हैं राजस्थान के करणा भील ने तो अपने नाखूनों से जेल की दीवारों को कुरच-कुरच कर भागने का रास्ता बना लिया था। जेलकर्मियों को मिठाई में नशा खिलाकर तिहाड़ जेल से भागे अन्तराष्ट्रीय अपराधी चार्ल्स शोभराज का किस्सा तो सर्वविदित रहा है। कैदियों के पास मोबाइल, हथियार, नशीले पदार्थ, आपत्तिजनक वस्तुएं तथा गोपनीय जानकारियां प्रायः होती हैं तथा इस दिशा में कोई सार्थक प्रयास नहीं हो पाते हैं। राजनीतिक पद तथा चर्चित प्रकरणों के वीआईपी कैदियों को जेल प्रशासन द्वारा दी जाने वाली सुविधाएं भी विवाद के विषय बनती रही हैं।

सार्थक प्रयास

देश भर की अदालतों में लगे मुकदमों के अम्बार को कम करने हेतु केन्द्रीय विधि एवं न्याय मंत्रालय द्वारा वर्ष 2009 में 'मिशन डॉक्यूमेण्ड' तथा 'विजन डॉक्यूमेण्ट' का निर्माण किया गया था जिसमें यह निर्धारित किया गया था कि 26 जनवरी, 2010 से 31 जुलाई, 2010 के मध्य लगभग 75 प्रतिशत विचाराधीन कैदियों को जेलों से रिहा किया जाएगा। वर्ष 2009 में देश भर की लगभग 1500 जेलों में लगभग 3.5 लाख कैदी थे जबकि इन जेलों की कुल क्षमता 2.5 लाख कैदियों को रखने की है। मंत्रालय द्वारा लगाए गए अनुमान के अनुसार देश भर की जेलों में अधिसंख्य कैदी अनावश्यक रूप से बन्द हैं। इसी क्रम में केन्द्रीय विधि एवं न्याय मंत्री श्री वीरप्पा मोइली ने उच्च न्यायालयों को लिखे पत्र में

आग्रह किया था कि वे ऐसे सभी कैदियों को रिहा करने की वैचारिक कार्यवाही करावें जो छोटे अपराधों के आरोपी हैं या वे अपने आरोप की संभावित सजा के बराबर या अधिक दिन जेल में काट चुके हैं। यह सहमति अगस्त, 2009 में मुख्यमंत्रियों तथा मुख्य न्यायाधीशों के सम्मेलन में बन चुकी थी। इस विधि से 1.70 लाख कैदियों को मुक्ति मिलने की संभावना है।

कारागारों पर राष्ट्रीय नीति की आवश्यकता

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् से ही भारत में कारागार प्रबंधन पर एक राष्ट्रीय नीति बनाने की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी। भारत सरकार के गृह मंत्रालय ने इस संबंध में सर्वप्रथम वर्ष 1972 में कारागारों पर एक कार्य-समिति का गठन किया जिसने कारागारों के विभिन्न पहलुओं का परीक्षण कर निम्नांकित विशिष्ट मुद्दों पर एक राष्ट्रीय नीति बनाने पर बल देने की आवश्यकता को रेखांकित किया था—

1. कारागार के विकल्पों को दंडनीति में सम्मिलित करके उनका प्रभावी उपयोग करना।

2. कारागारकर्मियों के उपयुक्त प्रशिक्षण तथा उनकी सेवा अनुबंधों में सुधार के लिए यथोचित दिशा-निर्देश निश्चित करना।

3. बंदी अपराधियों से वैज्ञानिक ढंग से निपटने एवं उनके उपयुक्त वर्गीकरण के लिए ऐसे नियमों को बनाना जिससे कारावास अवधि के दौरान उनकी देखभाल ठीक प्रकार से हो सके।

4. कारागार प्रशासन को राष्ट्रीय विकास नीति एवं राष्ट्रीय योजना प्रक्रिया के अन्तर्गत सामाजिक सुरक्षा के एक अभिन्न अंग की हैसियत प्रदान करना।

5. कारागार प्रशासन के विकास की आवश्यकता को युक्तियुक्त वरीयता प्रदान करना।

6. कारागार विकास के कुछ प्रमुख पहलुओं को पंचवर्षीय योजनाओं में शामिल करना।

वर्ष 1980 से 83 की अवधि के दौरान न्यायाधीश श्री ए.एन. मुल्ला के अध्यक्षता में गठित एवं कार्यरत एक अखिल भारतीय जेल सुधार समिति ने भी जेल सुधार एवं अपराधियों के सजा पूरी करने पर सजा में उनके पुनर्वास के लिए कारागार पर एक राष्ट्रीय नीति बनाने की आवश्यकता पर बल दिया। इस समिति ने कारागार और इससे संबंधित संस्थानों को संविधान की सातवीं अनुसूची की समवर्ती सूची में शामिल करने के लिए भी संविधान में आवश्यक संशोधन की अनुशंसा की थी ताकि राज्य कारागार मैनुअलों (संहिताओं) की समीक्षा के लिए केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा इसके लिए उपयुक्त नियम बनाए जा सकें।

भारत सरकार गृह मंत्रालय ने अपने संकल्प दिनांक 16 नवम्बर, 1995 के अन्तर्गत पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरों में कारागार/सुधारात्मक प्रशासन विभाग की स्थापना की। परिणामस्वरूप कारागार प्रबन्धन को सुचारु बनाने के लिए अनेक प्रयासों को संस्थागत रूप प्रदान किया गया, इनमें कारागार प्रबन्धन के विभिन्न महत्वपूर्ण पहलुओं पर राष्ट्रीय स्तर पर अनुसंधान किए गए साथ ही जेलकर्मियों के प्रशिक्षण, पाठ्यक्रमों एवं प्रशिक्षण सामग्री के निर्माण के साथ कई दिशा-निर्देशक सरल पुस्तिकाएं एवं आदर्श कारागार नियम पुस्तिकाओं को तैयार कर इनका वितरण सभी राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों में किया गया। विभिन्न स्तरीय जेलकर्मियों को जेल के विभिन्न भागों में प्रचलित जेल प्रबन्धन संबंधी प्रभावशाली कार्यप्रणाली की जानकारी के लिए राष्ट्रीय/क्षेत्रीय एवं राजस्वीय स्तर पर उपयुक्त मंच भी समय-समय पर प्रदान किए गए।

न्यायमूर्ति मुल्ला की अध्यक्षता वाली भारतीय जेल सुधार समिति की अनुशंसाओं पर गृह मंत्रालय ने दिसम्बर, 2005 में जेल सुधार एवं सुधारात्मक प्रशासन पर डॉ. किरण बेदी, महानिदेशक, पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो की अध्यक्षता में एक राष्ट्रीय नीति को प्रारूप तैयार करने की जिम्मेदारी सौंपी गई, जिसमें निम्नलिखित

बिन्दुओं पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाना अपेक्षित था—

1. कारागारों से संबंधित विद्यमान विधायी स्थिति की समीक्षा करके आवश्यक हुआ तो संसाधनों हेतु सुझाव देना।

2. जेल सुधार के लिए समय-समय पर गठित विभिन्न समितियों द्वारा की सिफारिशों की समीक्षा कर ऐसी ठोस अनुशंसाओं को चिन्हित करना जिनको केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा कार्यान्वयन किया जाना है।

3. जेल प्रशासन ने निम्नलिखित पहलुओं के संदर्भ में इन समितियों द्वारा की गई अनुशंसाओं के कार्यान्वयन स्तर की समीक्षा करना—

(क) कैदियों की शारीरिक स्थिति

1. अधिक संख्या तथा भीड़भाड़

2. स्वच्छ वातावरण

3. अन्य आधारभूत आवश्यकताएं

(ख) कैदियों की स्थिति

1. परीक्षणाधीन

2. दोषी ठहराना

3. कैदी

(ग) सुधारात्मक प्रशासन

1. परीक्षणाधीन/दोषियों के लिए कल्याण कार्यक्रम

2. छूटने के बाद पुनर्वास

3. समाज में शामिल होना

(घ) कारागारकर्मी

1. कारागारकर्मियों का पूर्ण रूप से विकास

2. प्रशिक्षण

(ड़) कैदियों तथा सुधारात्मक प्रशासन के आधुनिकीकरण से संबंधित अन्य किसी भी प्रकार के मुद्दे

4. दंड के विकल्पों से संबंधित सुझाव।

इन मुद्दों पर देश के विभिन्न भागों में अनेक मंचों पर विस्तृत विचार-विमर्श हुआ जिसमें आपराधिक न्याय प्रणाली व विशेषकर सुधारात्मक प्रशासन से संबंधित गैर सरकारी संगठनों के पक्षधारियों ने भी भाग लिया। इन सभी के बहुमूल्य सुझावों एवं विचारों का संकलन करके एक अंतरिम प्रतिवेदन तैयार किया गया। इस प्रतिवेदन के आधार पर राष्ट्रीय नीति का प्रारुप तैयार करने की जिसने विभिन्न स्रोतों से प्राप्त विचारों एवं सामग्री का विश्लेषण करके राष्ट्रीय नीति का प्रारुप तैयार किया गया था। पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो इस दिशा में निस्तर प्रयत्नशील रहा है कि देश में एक व्यावहारिक राष्ट्रीय कारागार नीति बने। ऐसा नहीं है कि देश में जेल प्रशासन तंत्र में सुधार को कोई नवाचारी प्रयास हुए ही न हों। डॉ. किरण बेदी द्वारा नई दिल्ली की तिहाड़ जेल में कैदियों के व्यवहार एवं रहन-सहन में लाए गए परिवर्तन विश्व स्तर पर प्रसिद्ध रहे हैं। खुली जेलों का प्रयोग भी सफलतापूर्वक अपनाया गया है। अब समय आ गया है कि सुशासन, पारदर्शिता एवं जवाबदेही प्रशासन का विकास सरकार के प्रत्येक कार्य क्षेत्र में हो तथा मानवाधिकारों के परिप्रेक्ष्य में कारागार सुधारों को गति दी जाए। इस दिशा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहल स्वयं न्यायपालिका को करनी होगी क्योंकि बिना सामयिक न्यायिक सुधारों के पुलिस एवं कारागार तंत्र की प्रभावशीलता बढ़ाना असंभव है। इस हेतु दृढ़ इच्छाशक्ति तथा राष्ट्रीय हितों के प्रति चिन्ता का भाव का होना प्राथमिक आवश्यकता है और यह भाव यकायक नहीं बल्कि बचपन से विकसित होता है अतः भारतीय शिक्षा प्रणाली में भी ऐसे सुधार करने होंगे जो कि अच्छे, राष्ट्रभक्त तथा संवेदनाओं से भरपूर शिक्षित नागरिक तैयार कर सके।

भारत में जेल एवं कैदी (सन् 2006)

क्र.सं.	राज्य का नाम	कुल जेल	महिला जेल	कैदियो की संख्या			
				जेलों की क्षमता	सजायाफ्ता कैदी	विचाराधीन कैदी	कुल कैदी
1.	आन्ध्र प्रदेश	127	02	12339	4992	9544	14536
2.	अरुणाचल प्रदेश	0	0	0	0	0	0
3.	असम	27	0	6357	3475	5000	8475
4.	बिहार	55	01	22032	5609	40019	45628
5.	छत्तीसगढ़	27	0	4563	4300	5508	9808
6.	गोवा	03	0	356	138	292	430
7.	गुजरात	23	0	5453	4487	6432	10919
8.	हरियाणा	19	0	10587	4786	7657	12443
9.	हिमाचल प्रदेश	13	0	972	639	529	1168
10.	जम्मू-कश्मीर	13	0	3100	221	1537	1758
11.	झारखण्ड	26	0	5945	5292	13511	18803
12.	कर्नाटक	97	0	9271	4096	7683	11779
13.	केरल	39	01	5239	2809	3861	6670
14.	मध्य प्रदेश	116	0	18566	14391	16991	31382
15.	महाराष्ट्र	210	01	20292	9727	16661	26388
16.	मणिपुर	02	0	1090	31	395	4260
17.	मेघालय	04	0	520	42	511	553
18.	मिजोरम	06	0	1004	165	661	826
19.	नागालैण्ड	10	0	1160	141	484	625
20.	उड़ीसा	70	01	9167	4196	9762	13958
21.	पंजाब	26	01	11274	4912	10078	14990
22.	राजस्थान	104	02	15843	5702	7937	13639
23.	सिक्किम	01	0	121	73	122	195
24.	तमिलनाडु	133	02	18152	7463	13224	20687

25.	त्रिपुरा	11	01	1065	750	656	1406
26.	उत्तर प्रदेश	60	01	34446	11978	44740	56718
27.	उत्तराखण्ड	09	0	1763	765	1578	2343
28.	पश्चिमी बंगाल	53	01	19722	3871	14372	18243
29.	अण्डमान-निकोबार	04	0	309	66	159	225
30.	चण्डीगढ़	01	0	1000	84	371	455
31.	दादरा एवं नगर हवेली	01	0	40	0	43	43
32.	दमण एवं दीव	02	0	120	11	36	47
33.	दिल्ली	10	01	6250	2526	9791	12317
34.	लक्षद्वीप	04	0	16	0	06	06
35.	पुदुचेरी	04	0	305	119	169	288
	कुल	1312	15	248439	107857	250320	358177

आतंकवाद के उपागम

डा. अखिलेश शुक्ल

सहायक प्राध्यापक (प्रवर श्रेणी)
स्नातकोत्तर समाजशास्त्र विभाग,
ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा
मध्य प्रदेश

सारांश

आतंकवाद एक प्रकार का युद्ध है जो राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए लड़ा जाता है। आज संसार के लगभग सभी देश इससे त्रस्त हैं। इसीलिए आतंकवाद से निपटने के लिए बहुआयामी कदम उठाने पड़ेंगे। आतंकवाद के विरुद्ध पुलिस एवं सशस्त्र बल को उचित प्रशिक्षण, असत्र-शस्त्र एवं संचार के अत्याधुनिक साधन उपलब्ध कराने होंगे। साथ ही मनोवैज्ञानिक ढंग से हमें आतंकवादियों व उनसे जुड़े हुए लोगों को समझाना होगा कि हिंसा का मार्ग किसी भी उद्देश्य की पूर्ति में सहायक नहीं हो सकता है। मीडिया को भी अपने तरीके बदलने होगें और समाचार माध्यमों द्वारा आतंकवादियों को सही मार्ग पर लाने का प्रयास करना पड़ेगा। यदि खूंखार डाकू आत्मसमर्पण कर सकते हैं तो हम यह आशा कर सकते हैं कि राजनीतिक वार्ताओं के माध्यम से हम आतंकवादी आन्दोलनों को सुलझाने में सफल हो सकते हैं।

वर्तमान समय में आतंकवाद एक विश्वव्यापी गंभीर समस्या है, जो कानून, प्रशासन व समाज के लिये गंभीर खतरा है परन्तु वास्तविकता यह है कि प्राचीन समय से ही विभिन्न देशों और समाजों में यह पाया जाता रहा है। यद्यपि यह भी सही है कि पिछले कुछ दशकों में विश्वभर में आतंकवाद के नये स्वरूप, विधियों और उद्देश्य उभर कर सामने आये हैं, जो सभी देशों में विशेष चिंता का विषय बन गये हैं। आतंकवाद की परिभाषा करना उतना ही कठिन है, जितना इसे नियंत्रण करने के प्रभावी तरीके खोजना है। आतंकवाद का शाब्दिक अर्थ भय या आतंक फैलाने के संगठित और व्यवस्थित तरीकों से है।

आतंकवाद के लक्षण (Characteristics of Terrorism)

आज आतंकवाद क्षेत्रीय, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। आतंकवाद की ऊपर दी गयी परिभाषाओं एवं तत्वों के आधार पर हम आतंकवाद के कुछ सामान्य लक्षण निम्नवत निरूपित कर सकते हैं।

(1) कोई भी ऐसी कार्यवाही जिससे किसी वस्तु विशेष की क्षति या हानि पहुंचाने का प्रयास किया गया हो तथा इन कार्यवाहियों से जनता के बीच किसी प्रकार का भय का वातावरण बनता हो तो यह सभी कार्य आतंकवादी गतिविधियों के अन्तर्गत आते हैं। इसके अन्तर्गत स्वचालित हथियार व बमों का प्रयोग भी सम्मिलित है।

(2) आतंकवादियों के अपने कुछ विश्वास होते हैं। दूसरे शब्दों में आतंकवाद अपने किसी विश्वास की प्रणाली पर कार्य करता है। उनके कुछ चिन्ह या प्रतीक, अवधारणायें तथा मिथक होते हैं, जिनके आधार पर वे अपनी गतिविधियों एवं क्रियाकलापों का निर्धारण करते हैं, जनमत को भी वे इन्हीं आधारों पर अपने पक्ष में करने का प्रयास करते हैं। वे अपने उन उद्देश्यों एवं लक्ष्यों का प्रचार करते समय इन्हीं बातों का सहारा लेते हैं। इस तरह आतंकवाद जिसका कि मूल स्वरूप राजनैतिक रूप में परिलक्षित होता है अपने राजनैतिक उद्देश्यों को प्रचारित करता है।

(3) आतंकवाद हिंसा पर विश्वास करता है। आतंकवादी अपने राजनीतिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए हिंसा की धमकी या वास्तविक हिंसा का प्रयोग करते हैं।

(4) आतंकवाद अपने सामर्थ और अपनी प्रहार शक्ति को प्रदर्शित करता है। आतंकवादियों के लक्ष्य में महत्वपूर्ण व्यक्ति, संचार के साधन, पुल, सड़के, रेल की

पटरियां, हवाई अड्डे, महत्वपूर्ण भवन, वायुयान, भीड़-भाड़ से युक्त स्थान तथा अणु शक्ति संस्थान आदि रहते हैं, जैसे-अमरीका के दो प्रमुख शहरों—व्यापारिक राजधानी न्यूयार्क तथा राजनीतिक राजधानी वाशिंगटन डी.सी. के दो महत्वपूर्ण ठिकानों पर 11 सितम्बर 2001 को आतंकवादी हमले किए गए। इन हमलों में बिल्कुल नया आत्मघाती तरीका अपनाया गया। आतंकवादियों ने बोस्टन हवाई अड्डे से यात्री विमानों का अपहरण कर उन्हें पूर्व निर्धारित निशानों से टकराया। चार विमानों में से दो को विश्व व्यापार केन्द्र के टिबन टावर्स (दो टावर) से अलग-अलग 15 मिनट के अन्तराल पर टकराया गया। दूसरे विमान को पैंटागन (वाशिंगटन डी.सी.) भवन जो कि अमरीका का रक्षा मुख्यालय है, से टकराया गया। चौथा विमान पेनसिल्वानिया में दुर्घटनाग्रस्त हो गया। इन हमलों में विश्व व्यापार केन्द्र के दोनों टावर ढह गए तथा पैंटागन के विशाल क्षेत्रुल में बने पांच मंजिला भवन के एक हिस्से को भारी नुकसान हुआ। इन हमलों के मुख्य संदिग्ध के रूप में अमरीका एवं उसकी गुप्तचर एजेन्सी एफ.बी.आई. ने अफगानिस्तान में रह रहे सऊदी आतंकवादी ओसामा बिन लादेन की पहचान की। बाद की जांच में यह तथ्य भी उजागर किया गया कि इन हमलों में अमरीकी राष्ट्रपति जार्ज डब्ल्यू. बुश की हत्या का उद्देश्य भी शामिल था। अपने लक्षित व्यक्ति को मारने के लिए वे मानव बम तक का प्रयोग करने से नहीं चूकते हैं।

(5) आतंकवाद का लक्ष्य शत्रु को हतोत्साहित, आतंकित, भयभीत और शक्तिहीन करना है।

(6) आतंकवादी कार्य उनसे सहानुभूति रखने वालों के साहस को मजबूत करते हैं।

(7) आतंकवादी संगठनों में शामिल क्रियाशील सदस्यों की संख्या अल्पसंख्यक होती है। अतः वे अपने बचाव के प्रति सचेष्ट रहते हैं। उनकी शक्ति सरकार की अपेक्षा कम होती है। इसलिये वे गुरिल्ला साधनों का प्रयोग करते है। यत्र-तत्र हिंसा, भय व सत्रांस उत्पन्न करने वाली परिस्थतियों आदि का मुख्य कारण यही है।

(9) आतंकवादी गतिविधियां चूंकि दहशत पैदा करने के लिए की जाती है इसलिये उनका प्राथमिक उद्देश्य तोड़-फोड़ और महत्वपूर्ण स्थानों को नष्ट करना होता है।

(10) आतंकवादी स्वेच्छाचारी तथा अकथ्य (जिनके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता है) होते हैं।

(11) आतंकवादी अपने लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु विशिष्ट व्यूह रचना करते हैं।

आतंकवाद के उद्देश्य (Objective of Terrorism)

इस तरह आतंकवाद के उक्त सामान्य कारकों को दृष्टि में रखते हुए उसके निम्नलिखित उद्देश्य निरूपित किया जा सकता है—

1. शक्ति के केन्द्र (राज्य/सरकार) से बलपूर्वक सौदेबाजी करके सुविधायें प्राप्त करना।
2. भय एवं चेतावनी युक्त वातावरण निर्मित करने हेतु भयानक हिंसा व क्रूरता पूर्ण कार्यों को करना ताकि प्रचार के साधन उन्हें जनता के बीच स्वयं पहुंचाये।
3. अपनी वांछित इच्छाओं की पूर्ति हेतु व्यापक पैमाने पर अव्यवस्था पैदा करना और सामाजिक ढांचे को विनष्ट कर देने का प्रयास करना।
4. राज्य में विद्रोही ताकतों को उभाड़ना और उन्हें विस्फोटक सामग्री एवं अस्त्र-शस्त्र प्रदान करना।
5. जनता को इस सीमा तक भयभीत करना कि वह उनके इशारों के अनुकूल कार्य करने लगे।
6. जनता के बीच उनका विद्रोह करने वाले व्यक्तियों को क्रूरतम ढंग से दण्ड देना।
7. अपने उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किसी भी महत्वपूर्ण भवन, स्मारक या स्थान को नष्ट कर देना।
8. महत्वपूर्ण व्यक्तियों का अपहरण कर लेना और उनके छोड़ने की शर्तों के रूप में अपनी बातें

स्वीकार करवाना।

9. अचानक विध्वन्स करना। विशेषरूप से सार्वजनिक भवन, सार्वजनिक व्यक्ति समूहों, सैनिकों या पुलिसजनों की हत्या करना, और

10. जनमानस में क्रूरतम किस्म का भय उत्पन्न करना, एक ऐसी स्थिति व वातावरण निर्मित करना जिसमें लोग इतने भयभीत हो जाय कि किसी भी क्षण कहीं भी कुछ भी हो सकता है।

आतंकवाद के उपागम (Approaches To Terrorism)

आतंकवाद का उक्त विश्लेषण यह स्पष्ट कर देता है कि अभी तक इससे सम्बन्धित कोई सर्वसम्मत सिद्धान्त प्रस्तुत नहीं हो पाया है। अतः आतंकवाद के सिद्धान्त के विकास की दिशा में जो कार्य किये गये हैं, उनके आधार पर इसके तीन मुख्य उपागम सामने आते हैं।

(1) राजनीति उपागम (Political Approach) : राजनीतिक आतंकवाद की उत्पत्ति किसी भी देश में उस समय होती है जब किसी वर्ग के अस्तित्व, राजनीतिक आधारों और सत्ता में पहुंच के मार्ग को अवरुद्ध किया जाता है। दूसरे शब्दों में किसी शक्तिशाली समूह अथवा कई शक्तिशाली समूहों के संगठित समूह की मांगों को जब शासन के द्वारा अस्वीकृत कर दिया जाता है, तब राजनीतिक आतंकवाद का मार्ग खुल जाता है। यह ऐसी स्थिति है जिसमें विदेशी शासन के विरुद्ध अथवा अपने ही शासन द्वारा मांगों को बुरी तरह दबा देने पर उत्पन्न होती है। इस तरह यदि कोई आतंकवादी कार्य या गतिविधि जिसका उद्देश्य राजनीतिक हो, उसे राजनीतिक आतंकवाद कहा जाता है।" इस दृष्टि से आतंकवाद का राजनीतिक उपागम राजनीतिक परिस्थितियों शक्ति (सत्ता) के ढांचे और सैन्य संगठन, प्रक्रियायें एवं उनके सह सम्बन्धों पर जोर देता है। इस उपागम की यह मान्यता है कि राजनीतिक आतंकवाद का धुआं राजनीतिक संस्थाओं के अन्तः संघर्षों से उत्पन्न होता है और आगे चलकर क्रान्तिकारी हिस्सा के रूप में प्रकट होता है। फेलिस्क ग्रास ने इस उपागम के अन्तर्गत आतंकवाद के दो प्रादर्श (Models) प्रस्तुत किये हैं। प्रथम प्रादर्श, उस आतंकवादी आन्दोलन का है जो विदेशी शासन के विरोध में अथवा आन्तरिक स्वेच्छाचारिता पूर्ण (तानाशाही) शासन के विरुद्ध उत्पन्न होता है और द्वितीय प्रादर्श, उस आतंकवाद का है जो प्रजातांत्रिक संस्थाओं के विरोध में असीमित या अवांछित स्वतंत्रताओं या मांगों के लिये उत्पन्न होता है। प्रथम प्रादर्श के लिये शासन द्वारा उत्पीड़न की दशाएं प्रमुख कारक बनती है। यह दशाएं समाज वैज्ञानिक दृष्टि से समझाई जा सकती है, जैसे कि सामन्तवादी या धार्मिक या वर्गीय दृष्टि से समाज में स्तरीकरण की कठोरता एवं वर्गीय भावनायें तथा उत्पीड़न आदि। जैसे भारत में ब्रिटिश शासन काल में ब्रिटिशर्स और भारतीयों की स्थिति में भेदभाव या अफ्रीकी महाद्वीप में नीग्रोज के साथ रंगभेद की नीति। स्वतंत्रता पूर्व भारत में क्रांतिकारी आन्दोलन या दक्षिण अफ्रीका में गोरी सरकार के विरुद्ध आन्दोलन प्रथम प्रादर्श के उदाहरण है। द्वितीय प्रादर्श के अन्तर्गत हम वर्तमान समय में कश्मीर में आतंकवादी गतिविधियों को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं किन्तु फेलिस्क ग्रास ने अपने दोनों प्रादर्शों में आतंकवाद के उन सभी लक्षणों का वर्णन किया है, जिन्हें हम पूर्व में आतंकवाद को परिभाषित करते हुये लिख चुके हैं। राजनीतिक आतंकवाद का उद्देश्य जनता का समर्थन प्राप्त करना, शासन की सैनिक व मनोवैज्ञानिक शक्ति को क्षतिग्रस्त करने का प्रयास करना और आन्तरिक असुरक्षा की भावना उत्पन्न करना होता है। आतंकवादी अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये विशिष्ट ब्यूह रचना करते हैं और दीर्घकालीन योजनायें बनाते हैं। राजनीतिक आतंकवाद एक बहुकारक अवधारणा है जो आधुनिक समाज के लिये असाध्य रोग बनता जा रहा है। संक्षेप में राजनीतिक आतंकवाद के मुख्य पांच मौलिक उद्देश्य बताये जा सकते हैं—(1)

आतंकवादी संगठन की गतिविधियों को निरन्तर जारी रखना, (2) जनता में दहशत फैलाये रखना, (3) सत्ता का निरन्तर विरोध करते रहना, (4) शासन को उद्वेलित व उत्तेजित करते रहना, और (5) मनोवैज्ञानिक रूप से अपने उद्देश्यों को सही साबित करने का निरन्तर प्रयास करते रहना। राजनीतिक आतंकवाद का प्रचार उनके दहशत पूर्ण कार्यो से होता है। इसीलिये इसे आतंकवादी कार्य के द्वारा प्रचार (Propaganda by Terrorist act) कहते हैं। आज राजनीतिक आतंकवाद ने अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप ग्रहण कर लिया है।

(2) मनोवैज्ञानिक उपागम (Psychological Approach) : आतंकवाद का मनोवैज्ञानिक उपागम आतंकवादियों के अध्ययन पर जोर देता है। आतंकवादियों का व्यक्तित्व उनका दृष्टिकोण, आतंकवाद की और उनका आकर्षण, किसी आतंकवादी संगठन में उनका प्रवेश और आतंकवादी गतिविधियों में उनका शरीक होना आदि का अध्ययन आतंकवाद को समझने में सहायक है। आधुनिक साहित्य में आतंकवाद के मनोवैज्ञानिक उपागम को मालरक्स ने अपने उपन्यास “ला कण्डीशन ह्यूमेन” में बहुत प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया है। मनोविज्ञान के प्रोफेसर राजनारायण (लखनऊ) ने भी आतंकवाद के मनोवैज्ञानिक उपागम को प्रस्तुत किया है। आतंकवादी गतिविधियों से जुड़े लोगों को ही हम आतंकवादी कहते हैं। संक्षेप में आतंकवाद के मनोवैज्ञानिक उपागम की मूल अवधारणा यह है कि कुछ ऐसी शक्तियां होती है जो कुछ व्यक्तियों के व्यवहार को हिंसात्मक बना देने में सफल हो जाती है। क्योंकि सामाजिक जीवन में लोग हिंसा को पसन्द नहीं करते हैं। यह ताकते व्यक्ति के व्यवहार को हिंसात्मक बनाती है। आतंकवादी संगठन ऐसे लोगों के मस्तिष्क में मनोवैज्ञानिक तरीके से यह बात बैठाने में सफल हो जाते हैं कि आज की बुराइयां इस व्यवस्था की देन है, जिसे वे बदल देना चाहते हैं। आतंकवाद की मनोवैज्ञानिक अवधारणा बुद्धि और तर्क से अलग नहीं रही है क्योंकि विजय और पराजय कुछ क्षण में ही आतंकवादी को सेनानी या अपराधी के रूप में प्रदर्शित कर देती है। दूसरे शब्दों में जैसा कि डॉ. माथुर ने कहा है, आतंकवादियों के कार्य का आधार उसके परिणाम पर आधारित होता है, जो आतंकवादी को सदाचारी, देशभक्त या अनाचारी तथा राजद्रोही सिद्ध कर देता है। मार्शल टीटों, सुर्कणों जैसे आतंकवादी स्वतंत्रता सेनानी के रूप में गिने जाने लगे और बतिस्ता, ईदी, अमीन, पॉल पॉट सब प्रकार से अपराधी के रूप में प्रसिद्ध हो गये हैं। वास्तव में आतंकवाद का मनोवैज्ञानिक उपागम यह स्वीकार करता है कि अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण और संचार या मीडिया के द्वारा किया गया प्रचार आतंकवादियों के स्वरूप को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। दुर्भाग्य यह है कि आतंकवादी ऐसी भयावह स्थिति उत्पन्न कर देते हैं, जिनके कारण जन साधारण अपने आपको आतंकवादियों को समर्पित करते हुये उनके सिद्धान्तों में विश्वास करने लगते हैं तथा उनके सहायक या सहयोगी भी बन जाते हैं।

एक जनतान्त्रिक प्रणाली वाली स्वतंत्र विचारधारा की सरकार को बहुत सोच समझकर अपनी नीतियां व कार्यक्रम निर्धारित करने चाहिए। उसे यह सावधानी अवश्य बरतनी चाहिये कि कहीं कोई संगठन धार्मिक, जातीय, सांस्कृतिक या अल्पसंख्यकों के नाम पर कोई ऐसी आवाज न उठाने पाये जिससे कि वह सरकार अवांछित भय और उत्पीड़न देने वाली कही जाकर उसके विरुद्ध आन्दोलन शुरू न किये जा सके। भारतीय राजनीति में यह लक्षण पाये जाते हैं। इसीलिये यहां अक्सर अनसन, बन्द, हड़ताल, घेराव, सत्याग्रह आदि प्रत्यक्ष कार्यवाही के तरीकों का व्यापक प्रयोग होता है। राजनीतिक दलों की अधिकता के कारण सत्तारूढ़ सरकार पर ऐसे आरापे लगाते हुये कुछ मांगों को सामने रखकर इन असंवैधानिक गतिविधियों का संचालन किया जाता

है। कभी-कभी यह आन्दोलन हिंसात्मक भी हो जाते हैं। यद्यपि सभी राजनीतिक दल इस प्रकार की हिंसात्मक घटनाओं का विरोध करते हैं किन्तु उनके कार्यों स हिंसा को प्रोत्साहन मिलता है। इसलिये सरकार को ऐसे हिंसात्मक आन्दोलनों के दबाने का कार्य करना चाहिये। किन्तु सरकार इन्हें तब तक बरदाश्त करती है जब तक इनमें हिंसा का तत्व शामिल नहीं होता ओर इसीलिये लोकतांत्रिक समाज में आतंकवाद फलता-फूलता रहता है।

(3) सैनिक उपागम (Military Approach) : आतंकवाद का सैनिक उपागम फ्रांसीसी विचारकों की देन है। कुछ अमेरिकन अध्येताओं ने भी इस उपागम को स्वीकार करते हुये आतंकवाद का अध्ययन किया है। इनमें थार्नटन (Thornton) का नाम विशेष उल्लेखनीय है। थार्नटन ने आतंकवाद (विद्रोह) का प्रादर्श (Model) निम्नवत प्रस्तुत किया है। इस प्रादर्श में थार्नटन ने आतंकवाद के चार चरण-तैयारी, प्रारंभिक, हिंसा, हिंसा का विस्तार और हिंसात्मक कार्यों में सफलता बताये हैं। आतंकवादी संगठन इन कार्यों में विद्रोही (बागियों) तथा भाड़े पर लाये गये युवक को संलग्न करते हैं। डॉ. राजनारायण के अनुसार इस प्रादर्श में कुछ कमियां है। उनके अनुसार यह प्रादर्श आन्तरिक युद्ध की स्थितियों पर निश्चित रूप से लागू होता है किन्तु यह आतंकवादी संघर्षों को पूरी तरह स्पष्ट नहीं कर पाता है। थार्नटन उन परिस्थितियों को स्पष्ट नहीं कर पाये हैं, जो किसी व्यक्ति के व्यवहार को आतंकवादी बना देती है। इसके अलावा यह उपागम शस्त्रों की उपलब्धता, उनका प्रदाय, उनकी भूमिका और आतंकवाद में अत्याधुनिक अस्त्र-शस्त्रों और उनकी प्रणालियों के विकास को भी ठीक ढंग से प्रस्तुत नहीं कर पाता है। आज आतंकवादियों की मारक क्षमा पूर्वकाल की तुलना में बहुत अधिक बढ़ गई है। वर्तमान समय में आमने-सामने के युद्ध के स्थान पर शत्रु पर बहुत दूर से निशाने लगाये जा सकते हैं। आतंकवादी अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए बम विस्फोट जैसे साधनों का प्रयोग करने लगे हैं, जिन्हें वे रिमोट कन्ट्रोल से कार्यरूप प्रदान करते हैं। अतः इस उपागम में इन नवीनतम दृष्टिकोण को भी शामिल करके आतंकवाद का अध्ययन किया जाना चाहिये। इस तरह आतंकवाद का सैनिक उपागम यह जोर देता है कि आतंकवादी हत्यायें करके, भय उत्पन्न करके और बम विस्फोट करके सेना, सशस्त्र बल, पुलिस, सरकार और जन साधारण पर प्रभाव डालने का और उन्हें हतोत्साहित करने का प्रयास करते हैं। इस तरह आतंकवाद के आधुनिक स्वरूप को समझने के लिये हमें उसके अध्ययन के तीनों उपागमों-राजनीतिक उपागम, मनोवैज्ञानिक उपागम एवं सैनिक उपागम का सहारा लेना चाहिये। आतंकवादियों और आतंकवादी संगठनों का अध्ययन भी आतंकवाद को समझने में सहायता प्रदान करता है। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि समय के साथ-साथ आतंकवादियों की कार्यविधि बदलती रहती है। इस समय उनकी कार्यविधि के कुछ उदाहरण हम इस प्रकार दे सकते हैं, जैसे— विमान अपहरण (हाईजैकिंग), पत्र बम, बूवी ट्रेप, विध्वन्सक पार्सल, बम विस्फोट, राष्ट्रीय महत्व या भीड़-भाड़ के स्थानों में आतंक का प्रदर्शन, रिमोट कन्ट्रोल द्वारा विस्फोटक पदार्थों का प्रयोग करना, महत्वपूर्ण नेताओं, व्यक्तियों, विदेशी पर्यटकों, पुलिस अधिकारियों की हत्या, अपहरण या बन्धक बनाना और अन्तर्राष्ट्रीय तस्करी के माध्यम से आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों एवं विस्फोटक सामग्रियों को प्राप्त करना है।

इस तरह आतंकवाद एक प्रकार का युद्ध है जो राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए लड़ा जाता है। आज संसार के लगभग सभी देश इससे त्रस्त हैं। इसीलिए आतंकवाद से निपटने के लिए बहुआयामी कदम उठाने पड़ेंगे। आतंकवाद के विरुद्ध पुलिस एवं सशस्त्र बल को उचित प्रशिक्षण, अस्त्र-शस्त्र एवं संचार के अत्याधुनिक साधन उपलब्ध कराने होंगे। साथ ही मनोवैज्ञानिक ढंग से हमें आतंकवादियों व उनसे जुड़े हुए लोगों को समझाना

होगा कि हिंसा का मार्ग किसी भी उद्देश्य की पूर्ति में सहायक नहीं हो सकता है। मीडिया को भी अपने तरीके बदलने होंगे और समाचार माध्यमों द्वारा आतंकवादियों को सही मार्ग पर लाने का प्रयास करना पड़ेगा। यदि खूंखार डाकू आत्मसमर्पण कर सकते हैं तो हम यह आशा कर सकते हैं कि राजनीतिक वार्ताओं के माध्यम से हम आतंकवादी आन्दोलनों को सुलझाने में सफल हो सकते हैं।

❑

पुलिस में व्यवहारिक बदलाव से व्यवसायिक दक्षता

राकेश कुमार सिंह

द्वितीय कमांड अधिकारी
के.रि.पु. बल, खादरपुर,
गुडगांव (हरियाणा)

भारत में पुलिस आशाओं के विपरीत एक लोकतांत्रिक संगठन के रूप में कार्य नहीं करती है। पुलिस सेवाओं का उपयोग आम जनता, गरीब लोग या अन्य लोग जिनके पास सामाजिक या आर्थिक विशेषाधिकार नहीं है वे नहीं कर पाते हैं। पुलिस जो कि लोगों की सेवार्थ एक संगठन है वह राज्य एवं राजनेताओं के आदेशों के अनुपालना एवं कार्यों में ही लगी रहती है। पुलिस संगठन एक मानव प्रधान संस्था होते हुए भी इनमें मानवीय मूल्यों का अभाव रहता है। जिससे कि पुलिस स्नेह एवं सहायक के रूप में न जाना जाकर, एक भयाकित करने वाला एवं शोषक वर्ग के रूप में आम जनता के मन में छवि पैदा करती है। पुलिस अपने कार्यों में नकारात्मक पहल ज्यादातर राजनेताओं जिनके हाथों में पुलिस का कन्ट्रोल होता है के तुष्टिकरण के लिए करती रहती है। कभी-कभी पुलिस के उच्च अधिकारी भी राज्य एवं राजनेताओं के हित को साधनें में इस तरह जुट जाते हैं कि वे पता ही नही करना चाहते कि पुलिस किन मूल्यों के लिए बनाई गई है तथा इनको काम करने के लिए किस प्रकार के दृष्टिकोण रखने की जरूरत है। लेकिन इन सभी सीमाओं के बावजूद पुलिस अपने व्यवहार में बदलाव लाकर बहुत हद तक अपने व्यवसायिक दक्षता को निखार सकती है।

पुलिस संगठनों की कार्य प्रणाली के बारे में आम जनता में जागरुकता एवं जानकारी का अभाव है। कानून-प्रक्रिया काफी पेचीदा तथा समय बर्वाद करने वाला है। न्याय न तो जल्दी मिल पाता है न ही ऐसा करने की इच्छाशक्ति न्यायपालिका या पुलिस के पास प्रतीत होती है। वकील जो न्याय दिलानें के लिए एक सहायक कड़ी होते है, उनकी कार्यशैली भी ज्यादातर समय दोहन करने की होती है। जिससे कि न्याय प्रक्रिया लम्बी होती जाती है। इस प्रक्रिया में पुलिस द्वारा चार्जशीट से लेकर समय पर गवाहों की पेशी, सबूत जुटाने इत्यादि कार्यों में हमेशा देरी होती है। इसके अनेक कारण होते है। जिसमें कई बार पुलिस कर्मियों की गलती नहीं होती है। पुलिस कर्मियों का ज्यादातर समय बन्दोबस्त, वी.आई.पी. की सुरक्षा तथा आजकल त्योहारों एवं उत्सवों के समय सुरक्षा व्यवस्था चाक-चौबन्द करने में ही निकल जाता है। वास्तव में, कार्मिक एवं संसाधनों की कमी से जूझ रहे पुलिस संगठनों के लिए अप्रत्याशित सुरक्षा व्यवस्थाओं के सारे कार्यों के प्रगति को पीछे धकेल देता है तथा प्रक्रिया क्रमशः छूटती ही जाती है। अन्ततः पुलिस उन केश के बारे में ही दिलचस्पी लेती है जिसके लिए उस पर दबाव हों या उससे उसे कोई आमदनी हो सकता है। ऐसी परिस्थितियों में आम आदमी न सिर्फ अपने आप ठगा महसूस करता है बल्कि वह पुलिस को एक ऐसा संगठन समझता है जो कि अन्य सामाजिक कुरीतियों की ही तरह एक आवश्यक बुराई है।

पुलिसकर्मियों के स्वभाव में विनम्रता एवं अकपटता का संप्रेषण करना न सिर्फ किया जाए तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह एक दूसरे पर आश्रित बहुप्रक्रिया है। नेतृत्व का असंवेदनशीलता होना, समाज एवं मीडिया के द्वारा पुलिस के प्रति नकारात्मक रूख, आत जनता का पुलिस को सहयोग न करना, पुलिस के कार्यों में अत्यधिक इजाफा लेकिन उसी अनुपात में संसाधनों को न देना, सरकार के अन्य विभागों द्वारा पुलिस के संगठनात्मक उत्थान एवं विकास हेतु सौतेला व्यवहार कुछ ऐसे कारक

है जो पुलिसकर्मी को अपने व्यवहार बदलने में हमेशा बाधक सिद्ध होती रहेगी। फिर देश में आर्थिक विकास की जो धारा बह रही है क्या पुलिस विभग उससे अछूता ही रह जायेगा। साथ ही, बिना पुलिस को विकास में सहयोगी बनाये समाज कब तक विकास के प्रतिफलों का उपभोग कर पायेगा। आर्थिक विकास के साथ ही साथ नागरिकों की जीवन अधिक जटिल होती जाती है तथा उनकी मनोकामनायें बढ़ जाती है। आर्थिक सुरक्षा सुनिश्चित करने के बाद पुलिस से यह आशा करते हैं कि वे उनके धन, जान माल की सुरक्ष करने के साथ ही साथ सुविधाओं का निर्वाध सम्प्रेण को सुनिश्चित करें। आर्थिक विकास अपने साथ तकनीकी एवं अर्थ से जुड़े क्राइम भी लाता है जिसकी जांच प्रक्रिया अपने आप में जटिल है। इतना ही नहीं समृद्धि से ट्रैफिक, शहरीकरण तथा मनोरंजन से उत्पन्न जटिलता भी पुलिस के कार्यो को और चुनौतीपूर्ण बनाती है। कुल मिलाकर आर्थिक विकास से पुलिस के कार्यों में बढ़ोतरी एवं जटिलता भी आती है। अतः यह नितान्त आवश्यक है कि विकास के अनुरूप पुलिस संगठनों में मानव एवं अन्य संसाधनों की वृद्धि की जाय और यह त्वरित हो। बेहतर होता कि जनसंख्या वृद्धि के अनुपात एवं निर्माण तथा समाजिक व आर्थिक विकास के आधार पर एक मानक तैयार किया जाए जिससे कि राज्य सरकारें एक निश्चित संसाधन पुलिस के लिए उपलब्ध कराने के लिये बाध्य रहें। आखिर सुरक्षित जीवन का मौलिक अधिकार नागरिकों के लिए सुनिश्चित करने में पुलिस की महती भूमिका है।

यद्यपि अपनी सारी सीमाओं के बावजूद पुलिस संगठन बहुत हद तक अपने कार्यो के करने में सफल भी हो जाती है लेकिन खाकी वर्दी वालों का व्यवहार हमेशा ही आलोचना का विषय रहा है। पुलिसकर्मी अपने व्यवहार में लोगों के प्रति प्रदत्त सेवाओं को भी नकारते प्रतीत होते है। पुलिसकर्मी के व्यवहार में सुधार लाने के लिए यह जानना जरूरी है कि पुलिसकर्मी ऐसा व्यवहार क्यो करते हैं या ऐसी क्या परिस्थितियां होती है।

खाकी वर्दीधारी के आचरण में क्या गलत हुआ है। क्यों प्रत्येक व्यक्ति चिल्लाकर यह कह रहा है कि हमारे सभ्य समाज में पुलिस एक संगठि़ा, अत्यधिक बेरहम और असंवेदनशील मानव समूह है। ये शब्द, एक ऐसी सेवा जिसमें अभी भी कर्तव्य की भावना के साथ-साथ अनुशासन विद्यमान है, के प्रति कठोर तथा काफी हद तक अनुचित शब्द है। सभी बाधाओं के बावजूद, अधिकतर प्रतिकूल और जोखिमपूर्ण परिस्थितियों में भी सरकार के अन्य किसी भी अवयव की तुलना में यह अधिक तत्परता के साथ काम करता है। आखिर समस्याओं के बावजूद समाज में शान्ति बनाए रखने के लिए जो मान्यता और सम्मान मिलना चाहिए वह क्यों नहीं दिया जाता है। यह सब जटिलताएं, पुलिस कर्मचारियों की व्यवहारिक अभिरचना (Behavioural pattern) के संबंध में जांच और विश्लेषण की मांग करती है।

कार्यो का बोझ वरिष्ठों द्वारा असंवेदनशील व्यवहार, मीडिया से दुत्कार, लोगों का संदेह से देखना, राजनेताओं द्वारा धमकियां, कुव्यवहार एवं प्रशासनिक प्रताड़ना इत्यादि ऐसे अनेक कारण है जो कि पुलिसकर्मी को तनावग्रस्त रखती है जिसमें उसके व्यवहार में रूखापन आ जाता है। इन प्रशासनिक परेशानियों के साथ पारिवारिक कारण व्यवहार संबंधित समस्याओं को और बढ़ा देता है। लम्बे ड्यूटी समय (Duty hours) एवं विषम स्थानों पर तैनाती जहां परिवार के रखने की सुविधा एवं बच्चों के लिए उचित शिक्षा का अभाव इत्यादि रहता है, जिससे पुलिसकर्मी अपने पारिवारिक दायित्वों का निर्वाहन नहीं कर पाता है। ज्यादातर पुलिसकर्मी अपने परिवार से दूर रहते है। आधुनिक समय में ऐसी विषम परिवेश कार्मिको को तुरंत हताश एवं निराश कर देती है।

पुलिस सेवा के साथ उपयुक्त परिस्थितिजन्य समस्याओं को दूर करने का कोई भी ईमानदार प्रयास नहीं किया जाता है। और न ही कोई करना चाहता है। क्योंकि

इसके कारण कुछ अच्छी एवं सुविधायुक्त जगहों के पोस्टिंग के लिए सभी कार्मिक जीतोड़ सिफारिश या अन्य जुगाड़ो में ही लगे रहते हैं। जिससे राजनेताओं सहित उच्च अधिकारियों को भी खुशी रहती है और इसे वे अनुशासन के रूप में भी इस्तेमाल करते हैं। जिससे की न सिर्फ कार्य क्षमता प्रभावित होती है बल्कि कार्मिकों का मनोबल भी टूटता है। पुलिस संगठन कर्मियों में सुधार के बदले स्थानान्तरण एवं सुविधाओं को सजा के तौर पर इस्तेमाल करने की भी नीति अपनाती है। इन कारणों से पुलिस नेतृत्व अपनी विश्वसनीयता खो चुकी है।

पुलिस के व्यवहार में रूखापन एवं असंवेदनशील का एक बहुत बड़ा कारण है पुलिस संगठनों के प्रति समाज एवं राज्य के विभिन्न अंगो का पुलिस के प्रति सोच। कुछ ऐसे सोच निम्नलिखित है :—

- पुलिस संगठन को जो कार्य नेतृत्व द्वारा दिया जाता है उसे करना होता है न कि संगठन को जो करना चाहिये उसे सही ढंग से करने की स्वतंत्रता है।
- पुलिसिंग कार्यो के दौरान या सामाजिक उत्थान-पतन या आदोलनों के क्रम में पुलिसकर्मियों की शहादत अवांछनीय है। इससे किसी को कोई व्यथा नहीं होती है और एसे समय में कार्मिकों की शहादत सिर्फ प्रशासनिक प्रक्रिया है।
- पुलिस अपने कार्यो के लिए खुद ही संसाधन जुटा लेती है और यह संसाधन उनमें गैरकानूनी उगाही का एक भाग है जो कुछ हद तक सही सरकारी कामों में लग जाता है। अतः पुलिस के लिए संसाधनों के बारे में ज्यादा चिन्तित होने की प्रशासन को कोई आवश्यकता नही है।
- पुलिस की जांच प्रक्रिया में वैज्ञानिक आधार को अंगीकृत न करना। इससे पुलिस ज्यादातर ध्यान/जांच बड़े ही आदिम तरीके से दबाव डालकर या यातना देकर करने का फार्मूला ही अपनाती है। भारतीय पुलिस जांच के लिए अभी वैज्ञानिक परीक्षणों/जांचों को नहीं अपना पा रही है। क्योंकि इस दिशा में प्रशासन द्वारा सार्थक प्रयास नहीं किया जा रहा है। दरअसल, पुलिस में सुधार के प्रति प्रशासनिक उदासीनता ही पुलिस में पिछड़ेपन का सबसे बड़ा कारण है।

बहुत से लोगो की यह धारणा है कि पुलिस विशेषकर सिपाही वर्ग बुद्धिहीन, संवेदनशून्य, गुणविहीन और नैतिक मूल्यों से रहित लोग है। यह धारणा समाज की ओर से तिरस्कार एवं समाज के प्रति तिरस्कार पैदा करता है। इन सभी कारको के कारण लोगों के मन में यह धारणा बैठ गई है कि पुलिस में गलत सही की पहचान करने की शक्ति व सच्चाई पर चलने का साहस नहीं है तथा अच्छाई का साथ देने के लिए समर्पण भाव व ईमानदारी की कमी है।

पुलिस सेवा में वातावरणिक समृद्धि एक युक्तियुक्त उपाय है। कम से कम पेशेवर जीवन की भौतिक स्थितियों में तुरन्त सुधार किया जा सकता है। पुलिस के लिए थाने में अच्छी मूलभूत सुविधाएं, साजोसामान इत्यादि जिनके वे पात्र है मुहैया कराना चाहिये। पुलिस थाने के बहुत से कर्मचारियो को लेखन सामग्री, फोटोकापिंग जैसे आवश्यक वस्तुओं के अपर्याप्त इन्तजामों के कारण भ्रष्ट तरीकों को अपनाना पड़ता है। संसाधनों का अभाव एवं असंवेदनशील नेतृत्व एक विषाक्त (toxic) माहौल बनाता है। जिससे न सिर्फ तनाव पैदा होता है बल्कि नकारात्मक व्यवहारिक बदलाव आता है।

एक विषाक्त वातावरण में कार्य करना क्लेश है, और आश्चर्य यह है कि कोई भी लीडर/अफसर इतनी आसानी के साथ ऐसा नरक पैदा कर सकता है। ऐसे

लीडर का व्यवहार काफी गन्दा होता है एवं संगठन के लिए विषाक्त होता है। यह परिभाषा उस लीडर का वर्णन करने के लिए तय कि गई है जो अपने स्टाफ/अधिनस्थों की जिन्दगी को नरक बना देता है। और ऐसी शब्दावली के साथ कुछ सामान्य लक्षण स्थापित किए गए हैं तथा विषाक्त लीडर की धारणाओं को, ऐसे लीडरों द्वारा अनुसरण किए जा रहे कुछ लक्षणों के आधार पर स्पष्टतया निर्धारित किया गया है।

विषाक्त नेतृत्व की धारणा, उन अधिकारियों के लिए है जो अपने अधीनस्थ कर्मचारी जिनको वे कमान कर रहे है को देखभाल और उनके अभिमत का सम्मान करने में एवं नेतृत्व के स्तर पर असफलता से संबंधित है, जैसा आमतौर पर हेकड एवं बदमिजाज होना। जैसा कि यूनिवर्सिटी कालेज लन्दन के प्रो. एड्रियन फर्नहाम ने परिभाष दी है, एक विषाक्त लीडर में कुछ अकादमिक योग्यताओं के साथ ही साथ हेकड़ होना, अधीनस्थों पर चिल्लाने की प्रवृति होना तथा निम्नस्तरीय भावात्मक नियंत्रण होना, अधिक प्रबल होती है। उनका आगे यह भी अभिमत है कि, इस प्रकार के लीडर आसानी से उब जाते हैं, लम्बी अवधि की योजनाओं का लाभ नहीं उठा पाते हैं और अपने कार्यकर्ताओं द्वारा नए कौशल अर्जित करने पर उसे बहुत कम महत्व देते हैं। इस प्रकार विषाक्त लीडर स्वार्थी, उपेक्षा करने वाले और हेकड़ होते है, जो अपने लोगो को डांटते-फटकारते हैं और साथ ही साथ उनके बारे में कोई चिन्ता नहीं करते हैं, और उनका ध्यान मुख्यतः अपना काम करवाने पर होता है। विषाक्त नेतृत्व, काम के दौरान अधिकांश तकलीफों के स्रोत होते हैं। ऐसे नेतृत्व में लोगों का मनोबल गिरा हुआ रहता है, अनुशासनहीनता, गैर हाजिर होना तथा अस्वास्थ्यकर कार्य वातावरण मनोभावात्मक समस्याओं को और बिखेर देता है और इस प्रकार सभी को अत्यधिक तनाव में रखता है। इससे कर्मियों के व्यवहार में भी विषाक्तता आ जाती है।

पूरे विश्व में अपने अधीनस्थों के संबंध में निर्णय लेने के संबंध में सामन्ती मानसिकता है और इस कथन के प्रति कि "बॉस हमेशा सही है" के प्रति ईश्वरीय समर्पण की भावना है। सत्ता में (अधिकार की कुर्सी पर) बैठे लोगो को अपने अधीनस्थों के लिए नियम तथा स्वयं के लिए सुविधाएं/विशेषाधिकार निर्धारित करने की हैसियत रही है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि "अधिकार" को अक्सर हम जो कुछ चाहते हैं उसे प्राप्त करने की क्षमता अथवा दूसरों को प्रभावित करने की योग्यता के रूप में परिभाषित किया जाता है। नार्थ वेस्टर्न विश्वविद्यालय के समाज विज्ञानी आदम गैल्निस्की का कहना है कि शक्तिशाली व्यक्तियों का अन्य लोगों पर गहरा प्रभाव पड़ता है, तथा हर एक स्वाभाविक रूप से यह आशा करता है कि वे, दूसरों के प्रति संवेदनशील होंगे। तथापि, विषाक्त अधिकारी को यह पता ही नहीं होता कि दूसरे क्या सोचते हैं और इस प्रकार वह ठेठ रूप से कार्यरत परिपूर्ण शैतान होते हैं। इस संबंध में एक और मत है कि विषाक्तता के लिए केवल लीडर/अधिकारी ही जिम्मेदार हैं। पीटर फ्रोस्ट का अभिमत है कि "विषाक्तता (वह दर्द है जो लोगों को उनके स्वाभिमान से वंचित करता है, जो उन्हें उनके कार्य से काट देता है) निकटतम पदाधिकारियों, असहयोगी कर्मचारियों इत्यादि जैसे कई स्रोतों से आ सकती है, परन्तु किसी भी संगठन में इसका वातावरण उच्च स्तर पर ही तैयार होता है। अतः विषाक्त अक्सर ऊपर से नीचे आने वाली घटना है। और इस प्रकार इसका अविर्भाव स्तरों के लीडर और अधिकारियों से होता है। "विषाक्त व्यक्ति जितना बड़ा अधिकारी होगा उतना ही व्यापक फैला हुआ दर्द होगा और वहां इसी प्रकार व्यवहार करने वाले अधिक लोग होंगे।"

दुनिया बदल गई है, तथा मानव संसाधन प्रबंधन एक संतोलन कार्य बन गया है। यह व्यवसाय के बजाए, अब जीवन के संबंध में कुछ अधिक है। प्रत्यक्ष ज्ञान यह है कि, यदि संगठन इस बात में विश्वास करता है कि

लोग विशिष्टता लाते हैं तब यह समझना चाहिए कि लोग एक मुश्त सौदा (package deal) है। उनके अच्छे और बुरे दिन, तीव्र रचनात्मकता और उलझन के दिन होते है, और ये सभी उनकी निष्पादन योग्यता को काफी प्रभावित करते हैं। भावात्मक समझ, आपसी विश्वास एवं स्वस्थ संगठनात्मक संस्कृति एक दक्ष मानव संसाधन को विकसित करेगा। इससे स्वाभाविक रूप से दूसरों के प्रति अधिक विचारशील एवं करुणा (compassion) के जागृति को बढ़ावा देगा। जब दो लोग आपस में संवाद (interact) करते है तब मनोदशा के अन्तरण का प्रवाह अपनी अनुभूतियों को अधिक शक्तिशाली ढंग से अभिव्यक्त कर सकने वाले व्यक्ति की ओर से अधिक सहनशील/निष्क्रिय व्यक्ति की ओर होता है। अतएव, एक व्यवहार कुशल पुलिस कर्मी सहृदयता एवं संवेदनशीलता से शिकायतकर्ता की समस्याओं से लगाव रख कर उसके अनेकानेक परेशानियों को कम कर सकता है। अगर संगठन की सोच कर्मियों के बारे में सकारात्मक एवं संवेदनशील होगा तो निश्चय ही उनका व्यवहार अच्छा होगा। पुलिसकर्मी अच्छा व्यवहार करे एवं लोगों का दिल जीते इसलिए आवश्यक हो जाता है कि संगठन एवं नेतृत्व उनके साथ अच्छा व्यवहार रखे, उनका ख्याल रखें तथा उन्हें तनावमुक्त रखा जाए। सम्मान पाने की आदत एवं प्रतिष्ठा की ललक उन्हें दूसरों को भी सम्मान देने एवं सदाचार के लिए प्रेरित रखेगा।

❑

महिला सशक्तिकरण एवं सुरक्षा

डॉ. वीरां चाँदना

राजकीय स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय,
करनाल (हरियाणा)

नारी को अबला से सबला बनाने के लिए लेखिका का पुरजोर प्रयास रहा है। अतैव लेखिका ने विष्णु प्रभाकर के उपन्यासों से सारगर्भित मीमांसा की विवेचना कर भ्रष्टाचार उन्मूलन और अथक परिश्रम, धैर्य व साधारण जीवन की उपयोगिता पर प्रकाश डाला है। जीवन में आध्यात्मिक ऊर्जा का महत्वपूर्ण योगदान है, इसलिए देवी मां की स्तुति, गुरुओं की शौर्य गाथा, देवी-देवताओं के वाहनों द्वारा सामाजिक मिथ्या अवधारणाओं को रूढ़िवादिता से सजग समाज को नवदिशा व नवीन विचारों को अपनाने के लिए सहज अनुभूति व्यक्त की है। विष्णु प्रभाकर से जुड़ी हिसार की पहचान, अस्मिता की जानकारी प्रकृति और आधुनिकता की दौड़ में आंतरिक द्वंद्व, श्रेष्ठ कर्मों की पुनरावृति ही लेखिका का मूलरूप से उद्देश्य रहा है। शिव को प्रकृति और शिवा को माया रूप में प्रलक्षित कर मानवमात्र को अर्द्धनारीश्वर के रूप में युग-युगांतरों से जुड़े हैं। मानवमात्र के स्मृतिपटल पर श्रेष्ठ अत्यतुम विचारों की परिणति, कृति-वृति और दृष्टि में समन्यवता ही लेखिका की भावनाओं का अतीत से स्वस्थ आधुनिकता का प्रतिबिम्बन है। दहेज प्रथा का उन्मूलन, भ्रूण हत्या और अन्य कुकृत्यों से समाज को सजगता प्रदान करना, प्रपंचों से मुक्ति, स्वावलम्बन की निहित भावना और सरस्वती मां की आराधना से ज्ञान की प्राप्ति, दैवी संपति का उपार्जन और कर्मों के फलस्वरूप से यश की प्राप्ति की भावना को लेखिका ने पुष्ट किया है ताकि अंधकार से दीप्तिमान वातावरण की ओर निहारने में ही परम आनन्द की उत्पति हो सके।

कवि मैथिलीशरण गुप्त के अनुसार नारी तो केवल अबला है जो आजीवन दया की पात्र ही रहती है।

और ऐसा माना जाता है कि आज की दुनिया विचित्र नवीन प्रकृति पर सर्वत्र है, विजय पुरुष आसीन सामाजिक रथ के दो पहिए नर और नारी हैं। आधुनिक नारी तो अपने सतीत्व की रक्षा करने में सक्षम है, परन्तु लज्जावश उसे झुकना ही पड़ता है। वह सामाजिक मान-मार्यादाओं से आतंकित हैं गृहलक्ष्मी का रूप कहलाने वाली नारी मनुष्यों से कन्धे से कन्धा मिलाकर ढाबों व होटलों में बाईयों का कार्यभार भी संभाले हुए हैं। बच्चों के भरण-पोषण के साथ-साथ उनके ऊपर परिवार चलाने का भार भी थोंपा गया है। संचयित ऊर्जा को वह कहां-कहां खर्च करे। आज उसे सम्भल-सम्भल कर व फूंक-फूंक कर कदम रखना पड़ रहा है। पारिवारिक दायित्वों की पूर्ति के साथ उसे निर्लज्ज होकर असभ्य समाज की चुनौती को भी स्वीकार करना है। क्या पर-पुरा की आड़ में कार्यरत नारी अपने आप को भेड़ियों के चंगुल से भी सुरक्षित रख सकती है? लज्जा ही नारी का आभूषण है- अब बेतुका सा लगता है कि यदि वह लज्जा करती है तो बच्चों की शिक्षा-दीक्षा में वह प्रतिभागी नहीं बन सकती। उनको उच्च शिक्षा दिलवाने में भी नारी की अहम भूमिका है। यह एक सार्वभौमिक सत्य है कि केवल पुरुष के खून-पसीने की कमाई से तो केवल घर का निर्वाह हो सकता है, परन्तु बच्चों की उच्च तकनीकी शिक्षा के लिए नारी को भी पुरुष के साथ कन्धे से कन्धा मिलाना होगा, तभी अर्धनारीश्वर का सपना साकार होगा। जीवन की गाड़ी तभी खिचेंगी जब उस गाड़ी के दोनों पहिए समान होंगे। एक बड़ा और एक छोटा पहिया, बेमेल विवाह की निशानी हैं। नारी तो पति को चरित्र हनन से भी बचाती है। क्या रत्नावली ने श्री तुलसीदास को भक्ति का मार्ग नहीं दिखाया

श्री तुलसीदास भी अपनी पत्नी के तानों बानों में आकर श्री रामचरित मानस ग्रन्थ लिख बैठे। विद्योतमा

ने भी कालिदास को कवि बना डाला। कहां श्री कालिदास उज्जैन के मंदिर के द्वार के आगे माथे पर लगे घाव से निकले खून से रक्तरंजित होकर मूर्च्छित होकर पड़े थे तो देवी सरस्वती के द्वार पर पर्दापण होते ही कालिदास के घट के कपाट खुल गए और उष्ट्र-उष्ट्र पुकारने वाले कालि ने आधुनिक युग के शेक्सपीयर को भी फेल कर डाला। लेखिका स्वयं से हतप्रभ है कि भवानी मां के आशीर्वाद के बिना कुछ भी संभव नहीं है। ज्ञान-पिपासा तभी शांत हो सकेगी जब दशम् द्वार खुलने का मार्ग प्रशस्त होगा। मां भवानी की कृपा से मूर्ख-चण्डाल व्यक्ति भी ज्ञान का उपासक व प्रवाचक बन बैठता है। जिसके हृदय में उसका वास होता है, वही नर-नारी संसार में सर्वोत्तम होते हैं। वे अपने उद्धार के साथ-साथ दूसरों का भी उद्धार करते हैं।

झांसी की रानी लक्ष्मीबाई ने शत्रुओं के साथ लड़ते-लड़ते ही वीरगति प्राप्त की। वह अपने अव्यस्क पुत्र को पीठ पर बांध रणभूमि में शत्रुओं से लोहा लेती रही, परन्तु एक नाले में उसके घोड़े के पांव अटकने पर ही वह शत्रुओं से घिर गई और मारी गई। परन्तु उसने अपनी अस्मिता की पहचान की अनूठी छाप मानव हृदय में लगा दी-

अति रूपवती रानी पदमावती ने भी अपनी 16000 सखियों के साथ अपने आप को अग्नि की भेंट चढ़ा दिया परन्तु शत्रुओं के हाथों अपनी अस्मिता को लुटने नहीं दिया।

जलन्धर राक्षस की पत्नी तुलसी की अस्मिता भंग करने का श्राप स्वयं विष्णु भगवान को भी भोगना पड़ा। उन्होंने जलन्धर का रूप बनाकर मां तुलसी की अस्मिता को भंग किया और भगवान शंकर ने जलन्धर को मार डाला। जलन्धर राक्षस को अपनी पत्नी तुलसी के पतिव्रता धर्म के कारण मौत नहीं आ सकती थी। धर्मानुयायियों को उसके उत्पात और आतंक से बचाने के लिए उसकी धर्मपत्नी का सतीत्व भंग करना ही केवल एक उपाय था। विष्णु ने तो तुलसी के श्राप का फल भोगा। परन्तु फिर भी प्रत्येक वर्ष तुलसी विष्णु विवाह को घरों में प्रांगण में रचाया जाता है।

बॉलीवुड के एक प्रसिद्ध गायक को प्रथम विवाह के विषय में यह स्पष्टीकरण करने हेतु बिहार महिला आयोग के सम्मुख पेश होना ही पड़ा और भूल को सुधारने के लिए आपति का सामना करना पड़ा। क्या उनकी नई धर्मपत्नी है, दो दशक पहले उनकी पत्नी बनकर आयी थी क्या उसके हित सुरक्षित रखने में अपनी सौतन का साथ देंगी। यदि ऐसा न हुआ तो समझ लेना चाहिए कि नारी ही नारी की शत्रु है।

अर्थात नारी को मात्र शब्दिक सम्मान नहीं चाहिए। अपितु यथार्थ में नारी की शोचनीय स्थिति जो समाज के पुरुष वर्ग ने कई जगह बना दी है, सिर्फ नारी उत्थान के भाषण से काम नहीं चलने वाला, अपितु नारी की जो यात्रा अपने परिवार से प्रारम्भ होती है, सम्मान की नींव तो वहीं से रखी जानी चाहिए। नारी में वे सभी गुण हैं जो मानव की रक्षा के लिए अनिवार्य हैं। पृथ्वी के समान सहनशीलता, समुद्र की गहराई, दुर्गा-सी शक्ति, कभी ना खत्म होने वाला सूर्य-सा तेज उसके सबला रूप को और अधिक गरिमामय बना देता है

नारी को अपनी क्षमताओं को पहचान कर उन्हें साकार रूप अवश्य देना चाहिए।

पुरुष प्रधान भारतीय समाज में महिलाओं को न्याय की प्राप्ति हेतु असीम धैर्य शक्ति और आर्थिक सुदृढ़ता की आवश्यकता है। सर्वोच्च न्यायालय की प्रतिष्ठित अधिवक्ता 'इंदिरा जयसिंह' का मानना है कि बिना किसी आर्थिक मापदंड के निर्धारण के इस कानून का महिलाओं को अभीष्ट लाभ की प्राप्ति नहीं हो सकती। यद्यपि यह कानून मानसिक, शारीरिक हिंसा, प्रणय सूत्र में बंधने के पश्चात मधुर व्यक्तिगत संबंध व यौनशुचिता व अन्य भाव भंगिमाओं को भी अपने अन्दर समेटे हुए है। यह कानून गृह सुसज्जिता व सामाजिक

सुरक्षा प्रदान करने में सक्षम है। एक सीमा तक इसमें घरेलू हिंसा की स्पष्ट परिभाषा प्रकार और अपवाद भी सम्मिलित किए गए हैं। साथ ही इसमें अपराधियों की दंड प्रक्रिया का भी प्रावधान है, परन्तु घरेलू हिंसा में इसके दुरुपयोग की संभावना भी कम हो सकती है।

राष्ट्रीय अपराध अन्वेषण ब्यूरो के अनुसार भारतवर्ष में प्रत्येक तीन मिनट में महिलाओं के विरुद्ध एक नया अपराध देखने को मिलता है। प्रतिदिन महिलाएं अपने पतियों और निकट संबंधियों के उत्पीड़न से ग्रसित रहती हैं। दहेज कम लाने की अवस्था में हिंसा के कारण एक महिला को आत्महत्या के लिए विवश होना पड़ता है और वह धरती की तरह सहनशीलता रखते हुए सब सहन करती है। परन्तु लेखिका के अनुसार जब तक महिला आर्थिक रूप से सम्पन्न व सुशिक्षित नहीं होगी तब तक इसके लाभ के अवसर कुछेक वर्ग की महिलाओं तक ही सीमित रहेंगे क्योंकि भारतवर्ष की लगभग आधी जनसंख्या इस प्रकार की आपदाओं में झुलस रही है। यदि महिला घरेलू उत्थान में सृजनात्मक सोच भी रखती है तो भी उसको महिमामंडित किया जाता है। आर्थिक सम्पन्नता के साथ-साथ आधुनिक युग में महिलाओं को शारीरिक रूप से सशक्त बनना पड़ेगा तभी तो वह अपने ऊपर होने वाली हिंसा का मुंहतोड़ जवाब दे सकती है। प्रायः देखने में आता है कि अपनी शारीरिक क्षमता के कारण महिलाएं अपराधियों को भी धूल चटाने में सक्षम हो रही हैं। परन्तु अधिकांश विवादों में विरोधाभास है, परन्तु मानसिक कुंठा के कारण कुछेक महिलाएं एक भद्र पुरुष को भी उल्लू बनाती हैं और उनका आर्थिक दोहन करने में भी नहीं चूकती। हिंसा से निपटने के लिए भारत सरकार को स्त्रियों को जूड़ो-कराटे की निःशुल्क शिक्षा देनी चाहिए।

आजीविका प्राप्ति हेतु कुछेक महिलाएं ही सुदूर क्षेत्रों में पुरुष द्वारा की गयी हिंसा का शिकार हो जाती हैं और जीवनभर उनमें मानसिक अवसाद बना रहता है। परन्तु अधिकांश स्त्रियां स्वयं को समयानुसार ढाल सकती है। पति परमेश्वर की मान्यता को सहज रूप से संजोने वाली महिलाएं ही मुख्यतः इस प्रकार के जघन्य अपराध को झेलती रहती हैं। पति के साथ सती होने वाली स्त्रियों की संख्या कम होने लगी है। धार्मिक शास्त्र से उनके विचारों को इतनी परिणति हो जाती है कि स्त्रियां अपना सब कुछ पति पर न्यौछावर करने के लिए तत्पर रहती हैं। पुरुषों के बीमारी से ग्रसित होने पर उनके उपचार के लिए अपने आभूषण तक बेच डालती हैं, परन्तु बहुत कम पुरुष ही अपना सर्वस्व अपनी अर्द्धांगिनियों पर न्यौछावर करते हैं।

यह अक्षरशः सत्य विदित है कि भारतीय महिलाओं ने अपनी स्वायतता बनाए रखने के लिए एक लम्बी यात्रा तय की है। अतैव शनैः-शनैः इनकी आर्थिक पृष्ठभूमि और सामाजिक स्तर में सुधार होने लगा है। परन्तु आज भी भारतवर्ष में 'तलाक' या दांपत्य जीवन में कलह एक आपदा के रूप में देखी जाती है। फिर भी भ्रूण हत्या एक सीमा तक राष्ट्रीय त्रासदी है। कन्या भ्रूण हत्या करने वालों को यह सोचना चाहिए कि :—

सार्थक प्रयासों से धीरे-धीरे अधिकांश प्रांतों में स्त्री-पुरुष अनुपात में वृद्धि होने की संभावना है। आंकड़े बताते हैं कि अब भी 70 प्रतिशत महिलाएं किसी न किसी रूप में घरेलू हिंसा की शिकार हैं। अधिकांश अवस्थाओं में सामाजिक रूप से उसे पैतृक सम्पदा से वंचित होना पड़ता है और ससुराल में उसे आर्थिक पराधीनता झेलनी पड़ती है क्योंकि स्त्री को पराया धन समझ कर माता-पिता उससे संबंध विच्छेद कर लेते हैं और ससुराल पक्ष वाले उसे बेटी के रूप में नहीं अपनाते। परन्तु कई महिलाएं तो इतनी सशक्त होती हैं कि वे ससुराल और पीहर में भी दोनों में अपना अधिकार पाने एवं सामंजस्य स्थापित करने में सक्षम होती है। अभिनय अथवा माडलिंग करने वाली लड़कियां आर्थिक रूप से तो सम्पन्न महिलाओं की प्रतिभा चहुं ओर देखने को

मिलती है। चिकित्सा, शिक्षा, पर्यावरण, क्रीड़ा, राजनीति, जैव प्रौद्योगिकी इत्यादि क्षेत्रों में उनका सक्रिय योगदान सकारात्मक सिद्ध हो रहा है और कई बार तो वे प्रतिस्पर्धा में पुरुषों को भी पछाड़ देती हैं।

अनेक विरोधाभासी परिदृश्य में संसद में चौदह वर्षों तक चली अनवरत बहस और परिचर्चाओं के पश्चात महिला हिंसा निवारण कानून अक्तूबर 2006 में अस्तित्व में आ चुका है। यद्यपि यह कानून घरेलू हिंसा की शिकार लाखों महिलाओं को राहत प्रदान कर सकता है, परन्तु इसकी कई गुत्थियां अब भी सुलझ नहीं पा रही हैं क्योंकि पितृात्मक भारतीय समाज में घरेलू हिंसा की परिभाषा कुछ और ही है। कानून को प्रभावी रूप से लागू करने के लिए इसकी सर्वप्रथम बहस 1992 में प्रारम्भ हुई थी, जब राष्ट्र की कुछेक चुनिंदा अधिवक्ताओं ने घरेलू हिंसा का एक प्रारूप तैयार करके महिला कार्यकर्ताओं और महिला संगठनों के मध्य वितरित किया। प्रारम्भिक बहस में राष्ट्रीय महिला आयोग की भी सक्रिय भूमिका रही। तदोपरान्त महिला आयोग ने ही इस वर्ष 1994 में इस प्रस्ताव को सर्वसम्मति से सदन के सम्मुख रखने के लिए आग्रह किया और इस प्रस्ताव की राष्ट्रीय स्तर पर व्यापक आलोचना हुई। वे संगठन जो महिलाओं के प्रति उदार चित रखते थे एक मंच पर आ गए। विभिन्न संगठन इस पर भी एकमत व सहमत हुए कि महिला घरेलू हिंसा निवारण कानून आपराधिक न होकर दीवानी होना चाहिए। इस प्रकार से स्त्री पक्षधर के अधिवक्ताओं का एक और समूह 1999 में एक नए प्रारूप के साथ उठ खड़ा हुआ जिसकी बहस पुनः राष्ट्रीय स्तर पर छिड़ गयी।

नारी की स्वायतता की राजनैतिक क्षेत्र में भी वृद्धि हुई है। सामाजिक न्यास मंत्री मीरा कुमार ने केन्द्रीय सरकार से दलितों के आरक्षण के कोटे को बढ़ाने के लिए आग्रह किया है। उनका यह मानना है कि 68 जाति के दलितों की जनसंख्या में वृद्धि व बुद्ध धर्म के अनुयायियों को दलित वर्ग में रखे जाने के कारण उनका आरक्षण 15 प्रतिशत से बढ़ाकर 16.23 प्रतिशत कर देना चाहिए। यह कोटा 1953 में 12.5 प्रतिशत निर्धारित किया गया था जो कि 1961 की गणना के परिप्रेक्ष्य में 1970 में बढ़ाकर 15 प्रतिशत निर्धरित किया गया। अब इस कोटे की सीमा 49.5 प्रतिशत है। 15 प्रतिशत दलितों के लिए, 75 प्रतिशत अनुसूचित जनजातियों के लिए व 27 प्रतिशत अन्य पिछड़े वर्गों के लिए। यदि मीरा कुमार का यह प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता है तो सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की अवहेलना होगी।

सब को पता है कि न्यायालय के निर्णय की मुहर लगने के पश्चात घटना संदेह के घेरे में आ जाती है। आत्मविश्वास के ही कारण शत्रुओं और षडयंत्रकारियों का मनोबल इतना टूटता है कि वे परास्त ही होते हैं। नारी कोई सौन्दर्य का आकर्षण नहीं और न ही वह अब समाज की कठपुतली है। जब चाहो उसे भोगो और व्यर्थहीन समझकर दुत्कारा जाए और उसकी निम्न अधोनागरिक के रूप में पहचान की जाए। अब तो फौज में भी नारियां पदार्पण कर रही हैं और कुछेक ने इन अधिकारियों की करतूतों का व्याख्यान किया है। भले ही नर ने नारी का अनादर किया हो परन्तु उंगली उठने के पश्चात वे अधिकारी संदेह के घेरे में आ गए हैं जिन्होंने लुफ्त उठाया है। आज की नारी प्रलोभन में आने वाली नहीं। वह अपनी इच्छाओं का दमन करके भारतवर्ष को सुन्दर बना रही है। क्या कम्प्यूटर अभियन्ता, क्या काल सैन्टर कत्री, क्या चिकित्सक इत्यादि उसने तो पुरुष समाज के साथ होड़ लगा ली है। इससे प्रतिस्पर्धा की भावना बढ़ी है। अपने सुशील आचरण के कारण नारी ने विदेशों में भी अपनी छाप छोड़ी है।

नारी के संस्कारों से ही उनके पुत्र राजा, महात्मा, यौद्धा, दानी, यशस्वी, तपस्वी इत्यादि बन पाएं है। 'साकेत में उर्मिला के विरह से श्री मैथिलीशरण गुप्त ने सहृदयों के हृदय को नारी की पीड़ा से अवगत कराया—

जब मनुष्य में वैराग्य जागृत होता है तो उसको बड़े से बड़ा सुख, सुन्दर प्रियतमा धन-ऐश्वर्य उसके वेग को नहीं रोक पाते। अतैव महात्मा बुद्ध के वैराग्य की तीव्र आंधी को यशोधरा भी नहीं रोक पायी। उनके जीवन का ध्येय केवल अहिंसा व इच्छाओं का दमन ही बन गया। परामाया अथवा पराशक्ति को किसने देखा है। नारी में स्वायतता तभी आ सकती है जब वह अपने अन्दर आत्मविश्वास को ढूंढ लेती है। आत्म विश्वास के बिना दृढ़ संकल्प नहीं आ सकता और बिना संकल्प के मनोरथ अधूरे रह जाते हैं। जेसिका लाल हत्या केस में उसकी बहन ने आत्मविश्वास को जागृत रखा और अब षडयन्त्र विफल होता नजर आ रहा है।

आतंकवादी, स्त्रियों की अस्मिता को लूटने का दुस्साहस और अनैतिक कार्य कर रहे हैं। परन्तु नारी अपने सार्थक प्रयासों से उनको अपने चक्रव्यूह में फंसाकर उनकी कुटिल कूटनीतिज्ञों को विफल कर सकती हैं। जब भय, लोभ, कामुकता और प्रतिद्वन्द्व ईर्ष्या के कारण वे उनके चंगुल में फंस जाती हैं तो उनका मनोबल टूटता है और वे नाटकीय जीवन जीने पर विवश होती हैं। शठ तो केवल सत्संग से ही सुधर सकते हैं। सत्संग के लिए स्त्री के अटूट प्रेम, श्रद्धा और वात्सल्य रस की नितांत आवश्यकता है। यह सार्वभौमिक सत्य है कि जिस महिला ने भी सच्चे प्रेम के अश्रु बहाए, उनकी संताने व परिवार उन पर ही न्यौछावर होने के लिए तत्पर हुए। यदि छद्मवेश में त्रिया चरित्र दिखाकर किसी से झूठे प्रेम का व्यवहार किया जाए तो निश्चय ही वह स्त्री उसको धोखा देने के साथ-साथ स्वयं भी ठगी जा रही है। अन्ततगत्वा, स्वायतता के लिए नैतिकता की नितान्त आवश्यकता होती है।

ग्रन्थों के अनुसार आदि शक्ति ने ही तीन देवियों की उत्पत्ति की। तत्पश्चात पुरुषों के जोड़े उत्पन्न किए गए। जब ज्ञान, कर्म और वैभवता की प्रतीक नारी ही है तो उसमें क्या कमी हो सकती है। वे पुरुष बड़भागी होते हैं जिनकी स्त्रियां उनको चरित्रहीनता जैसे गहन पतन से सुरक्षित रखती हैं। जो स्त्रियां अपने पति की अन्धाधुन्ध कमाई पर अंकुश नहीं लगाती वे स्वयं तो गर्त के गड्ढे में गिरती हैं और अपनी पतियों को भी खाई में धकेल देती हैं। जब महिला यह ठान ले कि उसके घर में रिश्वत की कमाई न आए, अपनी इच्छाओं का दमन करके भौतिकी सुख-संसाधनों की ओर न निहारे तो निश्चय ही वह स्वच्छ समाज के निर्माण में योगदान दे सकती है। सरकारी नौकरी में आई हुई नारियों में से बहुत कम ही रिश्वत की ओर लपकती हैं। 90 प्रतिशत से ऊपर नारियां तो रिश्वतखोरी को घिनौनी दृष्टि से देखती हैं क्योंकि उनमें भावुकता होती हैं और वे भगवान से डरने वाली होती हैं।

भारतवासी भी नारी की महानता से अनभिज्ञ नहीं हैं तभी तो समूचे राष्ट्र को भारतमाता के नाम से पुकारा जाता है न कि भारत पिता। चित्र में तो कश्मीर को उसका मस्तक और कन्याकुमारी की ओर उसकी चरणपादुकाएं और साड़ी की निखर रही झालरें पूर्व व पश्चिम प्रान्त हैं। इस मनोहारी दृश्य की कल्पना भारतवासियों ने ही की है। एनी बेसेन्ट, भारत कोकिला सरोजिनी नायडू और कलकत्ता से लेकर समूचे विश्व को मानवता का पाठ पढ़ाने वाली मदर टेरेसा महान नारियों ने तो भारत के सम्मान को बढ़ाकर उसके मस्तक को गौरवान्वित किया है। जब-जब देवता राक्षसों से आतंकित हुए उन्होंने अपनी मां को ही पुकारा और मां त्रैलोकस्याश्वरी ने उनकी रक्षा की। स्त्री मां बनकर ही इस धरती मां पर पनप रहे पाप को हल्का कर सकती है। अब पापी दुष्टातमा इतने बढ गए हैं कि जिनके भार के नीचे धरती मां दबे जा रही है। सच्ची मां ही अपने बच्चों को अच्छे संस्कार देकर धरती मां को इन पापियों और धर्मद्रोहियों के चंगुल से मुक्त कराएगी। शिक्षापर्जन करने के लिए भी कैपिटेशन शुल्क क्या भारतमाता के विधान को कलंकित नहीं करता है? सुयोग्य बालाएं

जिन्होंने भारतमाता के अतीत को सुधारा और भविष्य को भी संवारने का सामर्थ्य रखती हैं। केवल इस कारण से तकनीकी शिक्षा से वंचित हो रही हैं।

नारी की स्वायतता तो अनिवार्य है परन्तु प्रत्येक चमकने वाली वस्तु स्वर्ण नहीं होती। नारी अपनी मनमानी भी कर सकती है। विषय-विकारों के उद्वेग ने कुछेक नारियों को भी निर्लज्ज बना दिया है। स्वायतता के चंगुल से छूटकर वे अपने परिवार से कट सी गयी हैं। जिससे पारम्परिक कुटम्बों के संस्कारों का प्रतिफल उनकी संतानों में नहीं आ पाता और वे संस्कारों से गौण ही हो जाते हैं।

भारतवर्ष में प्रति मिनट एक स्त्री पर जघन्य व अत्याचार की घटना होती है। प्रत्येक 45-47 मिनट में एक बलात्कार होता है, परन्तु यह सभी आंकड़े पन्नों पर हैं। लगभग 79 प्रतिशत बलात्कार की घटनाओं में परिचित व्यक्तियों, सम्बन्धी व प्रेम प्रसंगों की ही भूमिका होती है और केवल 21 प्रतिशत बलात्कार प्रत्यक्ष रूप से अत्याचार के रूप में ही प्रतिबिम्बित होते हैं। प्रतिवर्ष दर्ज होने वाली घटनाओं में केवल 30 प्रतिशत घटनाओं की सुनवाई न्यायालयों में की जाती है और मात्र 9 प्रतिशत मामलों में ही अभियुक्तों को दण्ड मिलता है। फलस्वरूप 91 प्रतिशत घटनाओं में अपराधी बच निकलते हैं। तात्पर्य यह है कि अधिकांश मामलों में उत्पीड़ित स्त्री अथवा बलात्कृता अपना मुँह नहीं खोलती, क्योंकि पारिवारिक सम्मान, लाज-लज्जा और व्यक्तिगत मान-सम्मान एक प्रश्नचिन्ह के रूप में उभरते हैं। दूसरा कारण यह भी है कि अधिकांश महिलाएं जानती हैं कि न्यायालयों में धन, समय और मर्यादा गंवानी पड़ती है और न्यायाधीश के हाथ भी बंधे हुए होते हैं क्योंकि वे तो साक्ष्यों और निर्दिष्ट प्रमाणों के आधार पर ही दंड देते हैं। अतैव लगभग 75 प्रतिशत घटनाएं तो कटघरे में प्रवेश ही नहीं कर पाती। न्याय का एक अपना ही स्वरूप होता है, भले ही 99 अपराधी छूट जाएं, परन्तु एक निर्दोष को दण्ड नहीं मिलना चाहिए। इस अवधारणा में परिवर्तन की आवश्यकता है क्योंकि न तो किसी निर्दोष को दण्ड मिलना चाहिए और न ही कोई अपराधी दण्ड से बच निकलना चाहिए। परन्तु इस गलत अवधारणा से मुक्ति तो केवल जनजागृति और कानून के बदलने से ही संभव है। न्यायालयों में लगभग 3.50 करोड़ मामले लम्बित हैं। न्याय प्रक्रिया कछुए की चाल की तरह चलती है। अपराधियों के भविष्य को परिवर्तित करने में कुछेक प्रवीण और दक्ष वकील पूरी ताकत झाँक देते हैं। वकील अपराधियों से अधिक से अधिक शुल्क प्राप्त करके मामले को संदिग्ध बनाने में सक्षम होते हैं। सामने वाले अभियोजन पक्ष का वकील तगड़ा न हो तो उत्पीड़ित पक्क्ष का मामला लड़खड़ाने लगता है। चूंकि हमारी न्याय प्रक्रिया जटिल व धीमी है। आरोपियों के लिए कहीं न कहीं राहत का कारण बन जाती है। धन के अभाव में न्याय प्रक्रिया में विलम्ब के साथ अभियोजन पक्ष का वकील उत्पीड़ित पक्ष को हार के कगार पर पहुँचा देता है। इसके अतिरिक्त चिकित्सक, विधि विज्ञान व प्रयोगशाला के विशेषज्ञ, गवाहों को डराने-घमकाने के लिए गुण्डा तत्व भी धन के बलबूते पर ही अपना रंग बदल सकते हैं। न्यायालयों में तो तारीखें ही मिलती हैं। न्याय में विलम्ब के कारण उत्पीड़िता पारिवारिक इज्जत, शर्म-लिहाज, धन के अभाव से सतत संघर्ष करती रहती है। क्योंकि पीड़िता को अपने व अपने परिवार की इज्जत का भय होता है, अतः वह ढंग से अपना पक्ष रख ही नहीं पाती। जलगांव (महाराष्ट्र) के सैक्स कांड में आरोपियों के बच निकलने का यही कारण रहा। 30 प्रतिशत आरोपी न्यायालय के कटघरे में खड़े होने के बाद भी केवल 9 प्रतिशत आरोपियों को दण्डित होना बहुत कम है अर्थात ऊँट के मुँह में जीरे जैसा है। अतैव नारी अत्याचार के प्रकरण स्पेशल व फास्ट ट्रैक कोर्ट मे ही चलें ताकि त्वतरित न्याय हो सके, ताकि वे लोग जो इस समाज व सभ्यता के प्रतिनिधि बने हुए हैं, वे भी

मासूम यौवनाओं के दैहिक शोषण की पैशाचिक प्रवृति से बच न पाएँ।

किसी भी राष्ट्र की मूल स्थिति और वास्तविकता का ज्ञान वहां की महिलाओं की वेशभूषा, आचरण, सभ्यता व संस्कृति से ही मिलता है। महिलाओं की दुर्दशा की ओर संभ्रात परिवार के धनाढ्य लोग बहुत ही कम ध्यान देते हैं। महिलाओं के प्रति सजृनात्मक सोच यही है कि उन्हें लोकसभा में भी 33 प्रतिशत आरक्षण दे दिया गया है। यह केवल व्यावहारिक विवेचना ही नहीं पाखण्ड भी है।

स्त्री पुरुष का विभाजन तो केवल जैविक (बॉयलोजीकल) है। इस धरातल पर सर्वप्रथम स्त्री ने ही जन्म लिया। आदिशक्ति ने ही तीन नयी स्त्रियों की उत्पति करके तीन युग्म नर के जोड़े उत्पन्न किए। केवल एक्स व वाई गुणसूत्र (क्रोमोसोम) का ही भेद नर और नारी के लिंग परिवर्तन का सूचक है। दोनों में एक जैसी चेतना है, थोडी सी शरीर की आकृति में भिन्नता केवल एन्जायम स्राव से ही है। स्राव से ही दैहिक परिवर्तन होते हैं। यदि शरीर की जीव रसायन क्रिया पुरुष के स्मृति पटल में छा जाए तो मर्द और स्त्री का भेद रहता ही नहीं। हमने स्वयं स्त्री को परदे के पीछे और घर की चारदीवारी में कैद करके अधिकाधिक भेद उत्पन्न किया है। उसे अधिक से अधिक महसूस करवाया है कि वह लड़की है, नारी है।

महिला को सही अर्थों में देखने के लिए विहंगम दृष्टिपात अत्यावश्यक है। स्त्री और पुरुष होना एक अकाट्य सत्य है। केवल लैंगिक भेद के कारण ही स्त्री पुरुष के जोड़े बनकर संसार में संतानोत्पति करके वंश की बेल बूटी को बढ़ाते हैं। पारस्परिक आलिंगन के कारण ही प्रेम प्रवाह चलता रहता है। मर्द, स्त्री को केवल अपनी ही पकड़ में रखना चाहता है, दूसरे का कामुक दृष्टि से देखना उसे पसन्द नहीं। आत्मस्वाभिमानी व्यक्ति तो अपनी जोरू की आन-शान के लिए मर मिटेगा। स्त्री-पुरुष को हम मात्र संबोधन न मानकर एक गहरी आत्यंतिक वास्तविकता मान बैठे हैं, प्राकृतिक रूप से इसकी मान्यता मिल भी सकती है परन्तु पराशक्ति के बाहर जो चेतना है उसमें स्त्री-पुरुष में कोई भेद नहीं है। यदि आप गहराई तक जाएं तो आपके मन में स्त्री के लिए भी वही भावविह्वलता होगी जो कि स्त्री को पुरुष से होती है और इस प्रकार से महिला हीन, दोयम, द्वितीय श्रेणी की, दासी, अनुगामिनी या गुलाम नहीं रहेगी।

सनातन धर्म के कर्णधार महामना पं. मदनमोहन मालवीय जी के तत्वाधान में एक समिति गठित की गई। जब अन्वेषण सम्पूर्ण हुआ तो सबको यह सुनकर विस्मय हुआ कि स्वयं मालवीय जी ने 22 अगस्त, 1946 को उस समिति की रिपोर्ट के आधार पर ही पुरुषों की भांति स्त्रियों को भी वेद पढ़ने का अधिकार दिया गया, उस वक्त से हिन्दू विश्वविद्यालय में स्त्रियों को भी पुरुषों की भांति वेदों की शिक्षा के अधिग्रहण का अधिकार है।

आजकल लिंग परिवर्तन के इस युग में पुरुष को स्त्री और स्त्री को पुरुष बनाया जा सकता है। केवल शल्यचिकित्सा ही इसका समाधान है। दूसरी ओर अब गर्भधारण के समय मनचाहा लिंग नर शिशु या मादा शिशु प्राप्त किया जा सकता है। कई भारतीय गर्भधारण के स्वर्णिम अवसर पर गुणसूत्र (क्रोमोसोम) में एक्स-वाई का प्रारूप परिवर्तित करके मनचाहा शिशु का लिंग धारण करवा रहे हैं। इस बदल रहे युग में अब भी लड़के-लड़की में भेदभाव किया जाता है। बच्चे के जन्म से पूर्व ही निजी क्लीनिकों में गर्भवती महिला का परीक्षण करके लड़की या लड़के का पता लगवाया जाता रहा है और यदि गर्भ में पल रही लड़की होती है तो गर्भपात करवा दिया जाता है। ऐसा करने में पुरुषों का तथा घर की नारियों का महत्वपूर्ण हाथ होता है। यह एक कानून का उल्लंघन है। इससे भ्रूण की हत्या तो होती ही है, वहीं गर्भपात से माता को भी कमजोरी का सामना करना पड़ता है और उसे नित नई-नई बीमारियां घेरे रहती हैं।

अतैव समाज में हो रहे इस घृणित कार्य पर रोक लगाने की नितांत आवश्यकता है। जो गर्भपात के इच्छुक हैं उनके मन में यह डालना आवश्यक है कि लड़का-लड़की एक समान हैं। कोई पूछे इनसे 'ध्रुव', प्रहलाद आदि का क्या पुत्रों ने नाम चलाया था।

मीराबाई ने तो सच्चा प्रेम दिखाकर भगवान कृष्ण को वश में कर ही लिया था। इससे बढ़कर बादशाह अकबर जिन्होंने "दीन-ए-इलाही" धर्म की नींव रखी उसके प्रेमराग और भाव विभोर करने वाली नृत्य की कला से इतने प्रभावित हो गए कि उन्होंने अपने गले का हार ही निकाल कर भेंट कर दिया। अतैव सच्चा प्रेम ही नारी स्वायतता की प्रथम निशानी है। जब नारी हर क्षेत्र में इतना समर्पण दिखा सकती है तो आवश्यकता है पुरुष को इसे समझने की।

चूल्हा चौका संभालने के अतिरिक्त आज की नारी तकनीकी क्षेत्र में भी इतनी पारंगित हो चुकी है कि वह मनुष्य की प्रतिद्वंद्वी बन चुकी है। फिर बजाय पुरुषों को उन्हें नीचा दिखाने की बजाय उसको साथ लेकर समाज, परिवार व अन्य भलाई के काम में लगाना चाहिए।

❑